

प्रेमचंद

की

लोकप्रिय कहानियाँ



प्रेमचंद की लोकप्रिय कहानियाँ





प्रेमचंद
की
लोकप्रिय कहानियाँ

प्रेमचंद

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

This Book is requested from [Request Hoarder](#)



अनुक्रमणिका

- 1- [लाग-डाट](#)
- 2- [रामलीला](#)
- 3- [कजाकी](#)
- 4- [गरीब की हाय](#)
- 5- [परीक्षा](#)
- 6- [क्रिकेट मैच](#)
- 7- [पंच-परमेश्वर](#)
- 8- [धोखा](#)
- 9- [भाड़े का टटू](#)
- 10- [जुगनू की चमक](#)
- 11- [सुजान भगत](#)
- 12- [ईदगाह](#)
- 13- [बेटों वाली विधवा](#)



संपादकीय

This Book is requested from [Request Hoarder](#)

हिंदी साहित्य जगत् में मुंशी प्रेमचंद का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका वास्तविक नाम धनपत राय था। इनका जन्म 31 जुलाई, 1880 को बनारस शहर से करीब चार मील दूर लमही गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मुंशी अजायब लाल था, जो डाक मुंशी के पद पर थे। इनके मध्यमवर्गीय परिवार में साधारणतया खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की तंगी तो न थी, परंतु इतना कभी न हो पाया कि इन्हें उच्च स्तर का खान-पान अथवा रहन-सहन मिल सके, इसी आर्थिक समस्या से मुंशी प्रेमचंद भी पूरी उम्र जूझते रहे। तंगी में ही उन्होंने इस नश्वर संसार को छोड़ा।

मातृत्व-स्नेह से वंचित हो चुके और पिता की देख-रेख से दूर रहने वाले बालक धनपत ने अपने लिए कुछ ऐसा रास्ता चुना, जिस पर आगे चलकर वे 'उपन्यास सम्राट', महान कथाकार, कलम का सिपाही जैसी उपाधियों से विभूषित हुए। उन्होंने बचपन से ही अपने समय की मशहूर और ऐयारी की पुस्तकें पढ़नी शुरू कर दीं। इन पुस्तकों में सबसे बढ़कर 'तिलिस्मी होशरुबा' थी। बारह-तेरह वर्ष की उम्र में उन्होंने अनेक पुस्तकें तो पढ़ ही डालीं, साथ में और बहुत कुछ पढ़ डाला, जैसे कि रेनाल्ड की 'मिस्ट्रीज ऑफ द कोर्ट ऑफ लंदन', मौलाना सज्जाद हुसैन की हास्य कृतियाँ, मिर्जा रुसवा और रतनशार के देशों किस्से।

लगभग चौदह वर्ष की उम्र में बालक धनपत के पिता का देहांत हो गया। घर में यँ पहले से ही काफी गरीबी थी, फिर पिता की मृत्यु के पश्चात् तो मानो उसके सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। रोजी-रोटी कमाने की चिंता सिर पर सवार हो गई। ट्यूशन कर-करके उन्होंने किसी प्रकार मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। वे आगे पढ़ना तो चाहते थे, पर किसी कारणवश कॉलेज में प्रवेश न मिल सका।

धनपत तब पंद्रह-सोलह वर्ष के ही थे कि उनका विवाह कर दिया गया। उनके लिए यह विवाह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा; लेकिन एक अच्छा संयोग यह जुड़ा कि सन् 1898 में मैट्रिक करने के बाद बनारस के पास चुनार के एक विद्यालय में शिक्षक की नौकरी मिल

गई। नौकरी करते हुए ही उन्होंने इंटर और फिर बी-ए- पास किया।

इनकी पहली पुस्तक 'सोज-ए-वतन' जब सरकार के द्वारा जब्त कर ली गई तो इन्होंने 'प्रेमचंद' नाम से लिखना शुरू कर दिया। 1916-17 में प्रेमचंदजी ने 'सेवासदन' लिखा। इस समय तक वह भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम से परिचित ही नहीं, उसके रंग में रँग चुके थे और उनकी लेखनी भारतीय सामाजिक समस्याओं पर बड़े वेग से चलने लगी थी। 'रंगभूमि' छपने पर इन्हें 'उपन्यास-सम्राट' कहा जाने लगा था। प्रेमचंदजी ने अनेक उपन्यास लिखे, जिनमें- 'कर्मभूमि' और 'गोदान' विश्वप्रसिद्ध उपन्यास माने जाते हैं।

प्रेमचंदजी काफी समय से पेट के अल्सर से बीमार थे, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था। इसी के चलते 8 अक्टूबर, 1936 को हिंदी का यह महान् लेखक हिंदी साहित्य जगत् से हमेशा के लिए विदा हो गया। लेकिन इस महान् लेखक की कहानियाँ आज भी इन्हें जीवित रखे हुए हैं।

-मुकेश 'नादान'



लाग-डाट

जो खू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी। कुछ डोंड़-मेंड़ का झगड़ा था। उनके परदादाओं में कई बार खून-खच्चर हुआ। बाप-दादाओं के समय से मुकदमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गए। लड़कों के समय में संग्राम की भीषणता और भी बढ़ी, यहाँ तक कि दोनों ही अशक्त हो गए। पहले दोनों इसी गाँव में आधे-आधे के हिस्सेदार थे। अब उनके पास उस झगड़ने वाले खेत को छोड़कर एक अंगुल जमीन न थी। भूमि गई, धन गया, मान-मर्यादा गई, लेकिन वह विवाद ज्यों-का-त्यों बना रहा। हाईकोर्ट के धुरंधर नीतिज्ञ एक मामूली सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनों ने गाँव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया था। एक दल की भंग-बूटी चौधरी के द्वार पर छनती तो दूसरे दल के चरस-गाँजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे। स्त्रियों और बालकों के भी दो दल हो गए थे। यहाँ तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी। चौधरी कपड़े पहने सत्तु खा लेते और भगत को ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातनधर्मी बने तो चौधरी ने आर्यसमाज का आश्रय लिया। जिस बजाज, पंसारी या कुंजड़े से चौधरी सौदे लेते, उसकी ओर भगतजी ताकना भी पाप समझते थे और भगतजी की हलवाई की मिठाइयाँ, उनके ग्वाले का दूध और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याज्य थे। यहाँ तक कि उनके अरोग्यता के सिद्धांतों में भी भिन्नता थी। भगतजी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रथा के मानने वाले। दोनों चाहे रोग से मर जाते, पर अपने सिद्धांतों को न तोड़ते।

जब देश में राजनैतिक आंदोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गाँव में आ पहुँची। चौधरी ने आंदोलन का पक्ष लिया, भगत उनके विपक्षी हो गए। एक सज्जन ने आकर गाँव में किसान-सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गए, भगत ने राजभक्ति का पक्ष लिया। चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा बन गया, भगत का घर राजभक्तों का क्लब बन गया।

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे, "मित्रे, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज। अपने देश में अपना राज हो, वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो?"

जनता ने कहा, "अपना राज हो, वह अच्छा है।"

चौधरी, "तो यह स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से, एक-दूसरे से द्वेष करना छोड़ दो। अपने झगड़े आप मिलकर निपटा लो।"

एक शंका, "आप तो नित्य अदालत में खड़े रहते हैं।"

चौधरी, "हाँ, पर आज से अदालत जाऊँ तो मुझे गऊहत्या का पाप लगे। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ और बचे तो परोपकार में लगाओ। वकील-मुख्तारों की जेब क्यों भरते हो, थानेदार को घूस क्यों देते हो, अमलों की चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के अपने धर्म की शिक्षा पाते थे वह सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे। अब वह विदेशी मदरसों में पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं, अपने देवताओं और पितरों की निंदा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, साल बनाते हैं और हाकिमों की गोइधरिया करते हैं। क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों को धर्मानुसार शिक्षा दें।"

जनता, "चंदा करके पाठशाला खोलनी चाहिए।"

चौधरी, "हम पहले मदिरा को छुना पाप समझते थे। अब गाँव-गाँव और गली-गली में मदिरा की दुकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपए गाँजे-शराब में उड़ा देते हैं।"

जनता, "जो दारू-भाँग पिए उसे डाँट लगानी चाहिए।"

चौधरी, "हमारे दादा-बाबा, छोटे-बड़े सब गाढ़ा-गजी पहनते थे। हमारी दादियाँ-नानियाँ चरखा काता करती थीं। सब धन देश में रहता था, हमारे जुलाहे भाई चैन की वंशी बजाते थे। अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देश वाले हमारा धन ढो ले जाते हैं बेचारे जुलाहे कंगाल हो गए। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीनकर दूसरों के सामने रख दें?"

जनता, "गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।"

चौधरी, "अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो, बस यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल हैं, उनकी बातों पर ध्यान मत दो।"

जनता ये सब बातें चाव से सुनती थी। दिनोदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरी के सब श्रद्धाभाजन बन गए।

भगतजी भी राजभक्ति का उपदेश करने लगे, "भाइयो, राजा का काम राज करना और प्रजा का काम उसकी आज्ञा का पालन करना है। इसी को राजभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गई है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलना महान् पातक है। राजविमुख प्राणी नरक का भागी होता है।"

एक शंका, "राजा को भी तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए?" दूसरी शंका, "हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो विलायत के बनिए-महाजन हैं।"

तीसरी शंका, "बनिए धन कमाना जानते हैं, राज करना क्या जानें?"

भगत, "लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमे ले जाओ लेकिन ऐसे पंच कहाँ हैं, जो सच्चा न्याय करें, दूध का दूध और पानी का पानी कर दें! यहाँ मुँह-देखी बातें होंगी। जिनका कुछ दबाव है, उनकी जीत होगी, जिनका कुछ दबाव नहीं है, वह बेचारे मारे जाएँगे। अदालतों में सब काररवाई कानून पर होती है, वहाँ छोटे-बड़े सब बराबर हैं, शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।"

दूसरी शंका, "अदालतों का न्याय कहने को ही है, जिसके पास बने हुए गवाह और दाँव-पेंच खेले हुए वकील होते हैं, उसी की जीत होती है, झूठे-सच्चे की परख कौन करता है? हाँ, हैरानी अलबत्ता होती है।"

भगत, "कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो। यह गरीबों के साथ घोर अन्याय है। हमको बाजार में जो चीज सस्ती और अच्छी मिले, वह लेनी चाहिए, चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा सेंट में नहीं आता है कि उसे रद्दी-फद्दी स्वदेशी चीजों पर फेंके।"

एक शंका, "अपने देश में तो रहता है, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता।"



दूसरी शंका, "अपने घर में अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर का अच्छा भोजन खाने लगेंगे?"

भगत, "लोग कहते हैं, लड़कों को सरकारी मदरसों में मत भेजो। सरकारी मदरसों में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कैसे पाते, बड़े-बड़े कारखाने कैसे बना लेते? बिना नई विद्या पढ़े अब संसार में निर्वाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़कर पत्र देखने और कथा बाँचने के सिवाय और क्या आता है? राज-काज क्या पढ़ी-पोथी बाँचने वाले लोग करेंगे?"

एक शंका, "हमें राज-काज नहीं चाहिए। हम अपनी खेती-बाड़ी ही में मगन हैं, किसी के गुलाम तो नहीं?"

दूसरी शंका, "जो विद्या घमंडी बना दे, उससे मूर्ख ही अच्छा, नई विद्या पढ़कर तो लोग सुट-बुट, घड़ी-छड़ी, हैट-कोट लगाने लगते हैं और अपने शौक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं। ये देश के द्रोही हैं।"

भगत, "गाँजा-शराब की ओर आजकल लोगों की कड़ी निगाह है। नशा बुरी लत है, इसे सब जानते हैं। सरकार को नशे की दुकानों से करोड़ों रुपए साल की आमदनी होती है। अगर दुकानों में न जाने से लोगों की नशे की लत छूट जाए तो बड़ी अच्छी बात है। वह दुकान पर न जाएगा तो चोरी-छिपे किसी-न-किसी तरह दूने-चोंगुने दाम देकर, सजा काटने पर तैयार होकर अपनी लत पूरी करेगा। तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान अलग हो और गरीब रैयत का नुकसान अलग हो और फिर किसी-किसी को नशा खाने से फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफीम न खाऊँ तो गाँवों में दर्द होने लगे, दम उखड़ जाए और सर्दी पकड़ ले।"

एक आवाज, "शराब पीने से बदन में फुरती आ जाती है।"

एक शंका, "सरकार अधर्म से रुपया कमाती है। यह उचित नहीं। अधर्मी के राज में रहकर प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है?"

दूसरी शंका, "पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसे की चाट हुई। इतनी मजदूरी किसको मिलती है कि रोटी-कपड़ा भी चले और दारू-शराब भी उड़े? या तो बाल-बच्चों को भूखों मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेईमानी करो। शराब की दुकान क्या है? हमारी गुलामी का अड्डा है।"

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी। लोगों को खड़े होने की जगह भी न मिलती। दिनोदिन चौधरी का मान बढ़ने लगा। उनके यहाँ नित्य पंचायतों में राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती, जनता को इन बातों में बड़ा आनंद और उत्साह होने लगा। उनके राजनैतिक ज्ञान की वृद्धि होने लगी। वह अपना गौरव और महत्त्व समझने लगे, उन्हें सत्ता का अनुभव

होने लगा। निरंकुशता और अन्याय पर अब उनकी तैयारियाँ चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतंत्रता का स्वाद मिला। घर की रुई, घर का सूत, घर का कपड़ा, घर का भोजन, घर की अदालत, न पुलिस का भय, न अमला की खुशामद, सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने लगे। कितनों ही ने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावों की एक लहर सी दौड़ने लगी।

लेकिन भगतजी इतने भाग्यशाली न थे। जनता को दिनोदिन उनके उपदेशों से अरुचि होती जाती थी। यहाँ तक कि बहुधा उनके श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुद्दरिस और इन्हीं कर्मचारियों के मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी-कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगतजी का बड़ा आदर-सत्कार करते, जरा देर के लिए भगतजी के आँसू पोछ जाते, लेकिन क्षण भर का सम्मान आठों पहर के अपमान की बराबरी कैसे करता! जिधर निकल जाते उधर ही उँगलियाँ उठने लगतीं। कोई कहता, खुशामदी टट्ट है, कोई कहता, खुफिया पुलिस का भेदी है। भगतजी अपने प्रतिद्वंद्वी की बड़ाई और अपनी लोकनिंदा पर दाँत पीस-पीसकर रह जाते थे। जीवन में यह पहला ही अवसर था कि उन्हें सबके सामने नीचा देखना पड़ा। चिरकाल से जिस कुल-मर्यादा की रक्षा करते आए थे और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, वह धूल में मिल गई। यह दाहमय चिंता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती। नित्य समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्यों कर पाऊँ, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूँ, कैसे उसका गरर तोड़ूँ? अंत में उन्होंने सिंह को उसी की माँद में पछाड़ने का निश्चय किया।

संध्या का समय था। चौधरी के द्वार पर एक बड़ी सभा हो रही थी। आस-पास के गाँव के किसान भी आ गए। हजारों आदमियों की भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य-विषयक उपदेश दे रहे थे। बार-बार भारतमाता की जय-जयकार की ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियों का जमाव था। चौधरी ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी जगह पर बैठे। स्वयंसेवकों ने स्वराज्य फंड के लिए चंदा जमा करना शुरू किया कि इतने में भगतजी न जाने किधर से लपके हुए आए और श्रोताओं के सामने खड़े होकर उच्च स्वर में बोले, "भाइयो, मुझे यहाँ देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य का विरोधी नहीं हूँ। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा, जो स्वराज्य का निंदक हो लेकिन इसके प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है, जो चौधरी ने बताया है और जिस पर तुम लोग लट्ट हो रहे हो। जब आपस में फूट और रार है, पंचायतों से क्या होगा? जब विलासिता का भूत सिर पर सवार है तो नशा कैसे छूटेगा, मदिरा की दुकानों का बहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियान, अद्वी, तंजेब से कैसे पिंड छूटेगा? जब रोब और हुकमत की लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे, विधर्मी शिक्षा की बेड़ी से कैसे मुक्त हो सकोगे? स्वराज लेने का केवल एक ही उपाय है और वह आत्मसंयम है। यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगों को समूल नष्ट करेगी। आत्मा को बलवान् बनाओ, इंद्रियों को साधो, मन को वश में करो, तुममें भ्रातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्ष्या और द्वेष का नाश होगा, तभी भोग-विलास से मन हटेगा, तभी नशेबाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा। स्वयंसेवा सब पापों का मूल है। यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षा

का दास बनाए हुए हैं। इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जाएगी। सब जानते हैं, मैं चालीस साल से अफीम का सेवन करता हूँ। आज से मैं अफीम को गऊ-रक्त समझता हूँ। चौधरी से मेरी तीन पीढ़ियों की अदावत है। आज से चौधरी मेरे भाई हैं। आज से मुझे या मेरे घर के किसी प्राणी को घर के कते सूत से बुने हुए कपड़े के सिवाय और कुछ पहनते देखो तो जो दंड चाहो दो। बस मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करे।"

यह कहकर भगतजी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़कर उनके गले से लिपट गए। तीन पुश्तों की अदावत एक क्षण में शांत हो गई।

उस दिन से चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गई और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जनता किसका अधिक सम्मान करती है।



रामलीला

इ धर एक मुद्दत से रामलीला देखने नहीं गया। बंदरों के भद्दे चेहरे लगाए, आधी टाँगों का पजामा और काले रंग का ऊँचा कुरता पहने आदमियों को दौड़ते, हू-हू करते देखकर अब हँसी आती है, मजा नहीं आता। काशी की रामलीला जगद्विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक से गया, पर मुझे तो वहाँ की लीला और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अंतर न दिखाई दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज-सामान अच्छे हैं। राक्षसों और बंदरों के चेहरे पीतल के हैं, गदाएँ भी पीतल की हैं, कदाचित् वनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों, लेकिन साज-सामान के सिवा वहाँ भी वही हू-हू के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन एक जमाना वह था, जब मुझे भी रामलीला में आनंद आता था। आनंद तो बहुत हलका सा शब्द है। वह आनंद उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर रामलीला का मैदान था और जिस घर में लीला पात्रों का रूप-रंग भरा जाता था, वह तो मेरे घर से बिलकुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा बैठता और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन लेने भी नहीं जाता। एक कोठरी में राजकुमारों का शृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुंदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौंहें, गाल, ठोड़ी बुंदकियों से रच उठती थीं। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था।

जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता, तो उस पर रामचंद्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, अब वह लाट साहब के दरबार में कुर्सी पर बैठकर भी नहीं होता। एक बार होम-मैंबर साहब ने व्यवस्थापक-सभा में मेरे एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब-तहसीलदारी में नामजद हुआ, तब भी ऐसी ही तरंगें मन में उठी थीं, पर इनमें और उस बाल-विह्वलता में बड़ा अंतर है। तब ऐसा मालूम होता

था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद नौका-लीला का दिन था। मैं दो-चार लड़कों के बहकाने में आकर गुल्ली-डंडा खेलने गया था। आज शृंगार देखने न गया। विमान भी निकला, पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिए उससे कहीं बढ़कर आत्मत्याग की जरूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता तो मैं कब का भाग खड़ा होता; लेकिन पढ़ाने में कुछ और ही बात होती है। खैर, दाँव पूरा हुआ। अगर मैं चाहता तो धाँधली करके दस-पाँच मिनट और पढ़ा सकता था, इसकी काफी गुंजाइश थी, लेकिन अब इसका मौका न था। मैं सीधे नाले की तरफ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किशती लिये आ रहा है। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राण-पण से आगे बढ़ता घाट पर पहुँचा तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था।

रामचंद्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी! अपने पाठ की चिंता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिससे वह फेल न हो जाएँ। मुझसे उम्र ज्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे, लेकिन वही रामचंद्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नकल में भी असल की कुछ-न-कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा ही तीखी रही है, वह मुझे क्यों उबारते! मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सब-के-सब अपनी धुन में मस्त थे, मेरी चीख-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेलीं, पर उस समय जितना दुःख हुआ, उतना फिर कभी न हुआ।

मैंने निश्चय किया था कि अब रामचंद्र से न कभी बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज ही दूँगा; लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर लौटे, मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया और ऐसा खुश हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।

रामलीला समाप्त हो गई थी। राजगद्दी होने वाली थी, पर न जाने क्यों देर हो रही थी। शायद चंदा कम वसूल हुआ था। रामचंद्र की इन दिनों कोई बात भी न पूछता था। न ही घर जाने की छट्टी मिलती थी और न ही भोजन का प्रबंध होता था। चौधरी साहब के यहाँ से सीढ़ा कोई तीन बजे दिन को मिलता था, बाकी सारे दिन कोई पानी को नहीं पूछता। लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचंद्र ही थे। घर पर मुझे खाने की कोई चीज मिलती, वह लेकर रामचंद्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनंद मिलता था, उतना आप खा जाने में भी कभी न मिलता। कोई मिठाई या फल पाते ही मैं बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचंद्र वहाँ न मिलते तो चारों ओर तलाश करता और जब तक वह चीज उन्हें न खिला देता, चैन न आता था।

खैर, राजगद्दी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा सा शामियाना ताना गया।

उसकी खूब सजावट की गई। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचंद्र की सवारी निकली और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गई। श्रद्धानुसार किसी ने रुपए दिए, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलिस के आदमी थे, इसलिए उन्होंने बिना कुछ दिए ही आरती उतारी। उस वक्त मुझे जितनी लज्जा आई, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास उस वक्त संयोग से एक रुपया था। मेरे मामाजी दशहरे के पहले आए थे और मुझे एक रुपया दे गए थे। उस रुपए को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे खर्च न कर सका। मैंने तुरंत वह रुपया लाकर आरती की थाली में डाल दिया। पिताजी मेरी ओर कुपित नेत्रों से देखकर रह गए। उन्होंने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन मैं हूँ ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रोब में बढ़ा लग गया। रात के दस बजते-बजते यह परिक्रमा पूरी हुई। आरती की थाली रुपयों और पैसें से भरी हुई थी। ठीक तो नहीं कह सकता, मगर अब ऐसा अनुमान होता है कि चार-पाँच सौ रुपयों से कम न थे। चौधरी साहब इनसे कुछ ज्यादा ही खर्च कर चुके थे। उन्हें इसकी बड़ी फिक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम दो सौ रुपए और वसूल हो जाएँ और इसकी सबसे अच्छी तरकीब उन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफिल में वसूली हो। जब लोग आकर बैठ जाएँ और महफिल का रंग जम जाए, तो आबादीजान रसिकजनों की कलाइयाँ पकड़-पकड़कर ऐसे हाव-भाव दिखाएँ कि लोग शरमाते- शरमाते भी कुछ-न-कुछ दे ही मरें। आबादीजान और चौधरी साहब में सलाह होने लगी। मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था। चौधरी साहब ने समझा होगा कि यह लौंडा क्या मतलब समझेगा। पर यहाँ ईश्वर की दया से अक्ल के पुतले थे। सारी दास्तान समझ में आती जाती थी।



चौधरी,"सुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज्यादाती है। हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबिका तो है नहीं। ईश्वर ने चाहा तो हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा। अब की चंदा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इतना इसरार न करता।"

करता।"

आबादीजान,"आप मुझसे भी जमींदारी चालें चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुजूर की दाल न गलेगी। वाह! रुपए तो मैं वसूल करूँ और मुँछों पर ताव आप दें। कमाई का अच्छा ढंग निकाला है। इस कमाई से तो वाकई आप थोड़े दिनों में राजा हो जाएँगे। उसके सामने जमींदारी झक मारेगी! बस कल ही से एक चकला खोल दीजिए! खुदा की कसम, मालामाल हो जाइएगा।"

चौधरी,"तुम दिल्लगी करती हो और यहाँ काफिया तंग हो रहा है।"

आबादीजान,"तो आप भी तो मुझी से उस्तादी करते हैं। यहाँ आप जैसे कइयों को रोज उँगलियों पर नचाती हूँ।"

चौधरी,"आखिर तुम्हारी मंशा क्या है?"

आबादीजान,"जो कुछ वसूल करूँ, उसमें आधा मेरा, आधा आपका। लाइए, हाथ मारिए।"

चौधरी,"यही सही।"

आबादीजान,"तो पहले मेरे सौ रुपए गिन दीजिए। पीछे से आप अलसेट करने लगेंगे।"

चौधरी,"वह भी लोगी और यह भी।"

आबादीजान,"अच्छा! तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी? वाह री आपकी समझ! खूब, क्यों न हो। दीवाना बकारे दरवेश हुशियार!"

चौधरी,"तो क्या तुमने दोहरी फीस लेने की ठानी है?"

आबादीजान,"अगर आपको सौ दफे गरज हो तो। वरना मेरे सौ रुपए तो कहीं गए ही नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ?"

चौधरी की एक न चली। आबादीजान के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीन और उसकी अदाएँ तो इस गजब की थीं कि मेरी तबीयत भी मस्त हुई जाती थी। आदमियों को पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गई, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रुपए से कम तो शायद ही किसी ने दिए हों। पिताजी के सामने भी वह बैठी। मैं मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यकीन था कि पिताजी उसका हाथ झटक देंगे और शायद दुत्कार भी दें, किंतु यह क्या हो रहा है ईश्वर! मेरी आँखें

धोखा तो नहीं खा रही हैं। पिताजी मुँछों में हँस रहे हैं। ऐसी मूढ़ हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपका पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था, मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादीजान के कोमल हाथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ? आबादी तो उनके गले में बाँहें डाले देती है। अब पिताजी उसे जरूर पीटेंगे। चुड़ैल को जरा भी शरम नहीं।

एक महाशय ने मुसकराकर कहा, "यहाँ तुम्हारी ढाल न गलेगी, आबादीजान! और दरवाजा देखो।"

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही और बहुत ही उचित कही, लेकिन न जाने क्यों पिताजी ने उसकी ओर कुपित नेत्रों से देखा और मुँछों पर ताव दिया। मुँह से तो वह कुछ न बोले, पर उनके मुख की आकृति चिल्लाकर सरोष शब्दों में कह रही थी, 'तू बनिया, मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार है। रुपए की हकीकत ही क्या! तेरा जी चाहे, आजमा ले। तुझसे दूनी रकम न डालूँ तो मुँह न दिखाऊँ।' महान् आश्चर्य! घोर अनर्थ! अरे, जमीन तू फट क्यों नहीं जाती। आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता? अरे, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती! पिताजी जेब में हाथ डाल रहे हैं। कोई चीज निकाली और सेठजी को दिखाकर आबादीजान को दे डाली। आह! यह तो अशरफी है।

चारों ओर तालियाँ बजने लगीं। सेठजी उल्लू बन गए। पिताजी ने मुँह की खाई, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता। मैंने केवल इतना देखा कि पिताजी ने एक अशरफी निकालकर आबादीजान को दी। उनकी आँखों में इस समय इतना गर्वयुक्त उल्लास था मानो उन्होंने हातिम की कब्र पर लात मारी हो। यही पिताजी हैं, जिन्होंने मुझे आरती में एक रुपया डालते देखकर मेरी ओर इस तरह से देखा था, मानो मुझे फाड़ ही खाएँगे। मेरे उस परमोचित व्यवहार से उनके रोब में फर्क आता था और इस समय इस घृणित, कुत्सित और निंदित व्यापार पर गर्व और आनंद से फूले न समाते थे।

आबादीजान ने एक मनोहर मुसकान के साथ पिताजी को सलाम किया और आगे बढ़ी, मगर मुझसे वहाँ न बैठ गया। मारे शरम के मेरा मस्तक झुका जाता था, अगर मेरी आँखों देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी ऐतबार न होता। मैं बाहर जो कुछ देखता-सुनता था, उसकी रिपोर्ट अम्मा से जरूर करता था। पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रखा। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुःख होगा।

रात भर गाना होता रहा, तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चलकर देखूँ, पर साहस न था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखाऊँगा? कहीं किसी ने पिताजी का जिक्र छेड़ दिया तो मैं क्या करूँगा?

प्रातःकाल रामचंद्र की विदाई होने वाली थी। मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा। डर रहा था कि कहीं रामचंद्र चले न गए हों। पहुँचा तो देखा,

तवायफों की सवारियाँ जाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हसरत नाक-मुँह बनाए उन्हें घेरे खड़े हैं। मैंने उनकी ओर आँख तक न उठाई। सीधा रामचंद्र के पास पहुँचा। लक्ष्मण और सीता बैठे रो रहे थे और रामचंद्र खड़े काँधे पर लुटिया-डोर डाले उन्हें समझा रहे थे। मेरे सिवा वहाँ और कोई न था। मैंने कुंठित स्वर में रामचंद्र से पूछा, "क्या तुम्हारी विदाई हो गई?"

रामचंद्र, "हाँ, हो तो गई। हमारी विदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया, जाओ, चले जाते हैं।"

"क्या रुपया और कपड़े नहीं मिले?"

"अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं, 'इस वक्त बचत में रुपए नहीं हैं, फिर आकर ले जाना।'"

"कुछ नहीं मिला?"

"एक पैसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था कि कुछ रुपए मिल जाएँगे तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा। सो कुछ न मिला। राह खर्च भी नहीं दिया। कहते हैं, कौन दूर है, पैदल चले जाओ!"

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को खूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिए रुपए, सवारियाँ, सबकुछ, पर बेचारे रामचंद्र और उनके साथियों के लिए कुछ भी नहीं। जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रुपए न्योछावर किए थे, उनके पास क्या इनके लिए दो-दो, चार-चार आने पैसे भी नहीं? पिताजी ने भी आबादीजान को एक अशरफी दी थी। देखूँ, इनके नाम पर क्या देते हैं। मैं दौड़ा हुआ पिताजी के पास गया। वह कहीं तफ्तीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मुझे देखकर बोले, "कहाँ घूम रहे हो? पढ़ने के वक्त तुम्हें घूमने की सूझती है।"

मैंने कहा, "गया था चौपाल। रामचंद्र विदा हो रहे थे। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।"

"तो तुम्हें इसकी क्या फिक्र पड़ी है?"

"वह जाएँगे कैसे? उनके पास राह-खर्च भी तो नहीं है।"

"क्या कुछ खर्च भी नहीं दिया? यह चौधरी साहब की बेइनसाफी है।"

"आप अगर दो रुपया दे दें तो मैं उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जाएँ।"

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा, "जाओ अपनी किताब देखो, मेरे पास रुपए नहीं हैं।"

यह कहकर वह घोड़े पर सवार हो गए। उसी दिन से पिताजी पर से मेरी श्रद्धा उठ गई। मैंने फिर कभी उनकी डाँट-डपट की परवाह नहीं की। मेरा दिल कहता, 'आपको मुझको उपदेश

देने का कोई अधिकार नहीं है।' मुझे उनकी सूरत से चिढ़ हो गई। वह जो कहते, मैं ठीक उसका उलटा करता। यद्यपि इसमें मेरी हानि हुई। लेकिन मेरा अंतःकरण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो आने पड़े हुए थे। मैंने उठा लिये और जाकर शरमाते-शरमाते रामचंद्र को दे दिए। उन पैसें को देखकर रामचंद्र को जितना हर्ष हुआ, वह मेरे लिए आशातीत था। टूट पड़े, मानो प्यासे को पानी मिल गया। यही दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियाँ विदा हुईं। केवल मैं ही उनके साथ कस्बे के बाहर तक पहुँचाने आया।

उन्हें विदा करके लौटा तो मेरी आँखें सजल थीं, पर हृदय आनंद से उमड़ा हुआ था।



कजाकी

मेरी बचपन की यादों में 'कजाकी' एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस वर्ष गुजर गए, कजाकी की मूर्ति अभी तक मेरी आँखों के सामने नाच रही है। मैं उस समय अपने पिता के साथ आजमगढ़ की एक तहसील में था। कजाकी जाति का पासी था, बड़ा ही हँसमुख, बड़ा ही जिंदादिल। वह रोज शाम को डाक का थैला लेकर आता, रात भर रहता और सुबह डाक लेकर चला जाता।

शाम को फिर उधर से डाक लेकर आ जाता। मैं दिन भर उद्विग्न हालत में उसकी राह देखा करता। ज्यों ही चार बजते, बेचैन होकर सड़क पर आकर खड़ा हो जाता। वह दूर से दौड़ता हुआ आता दिखलाई पड़ता। वह साँवले रंग का गठीला, लंबा जवान था। जिस्म साँचे में ऐसा ढला हुआ कि चतुर मूर्तिकार भी उसमें कोई दोष न निकाल सकता। उसकी छोटी-छोटी मूँछें उसके सुडौल मुँह पर बहुत ही अच्छी प्रतीत होती थीं।

मुझे देखकर वह और तेज दौड़ने लगता, उसकी झुँझुनी और तेजी से बजने लगती तथा मेरे दिल में जोर से खुशी की धड़कन होने लगती। हर्षातिरेक में मैं भी दौड़ पड़ता और एक पल में कजाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता। वह जगह मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग थी।

स्वर्ग के निवासियों को शायद वह आंदोलित आनंद नहीं मिलता होगा, जो मुझे कजाकी के विशाल कंधे पर मिलता था। दुनिया मेरी आँखों में तुच्छ हो जाती और कजाकी मुझे कंधे पर लिये हुए दौड़ने लगता, तब तो ऐसा महसूस होता, मानो मैं हवा के घोड़े पर उड़ा जा रहा हूँ।

कजाकी डाकखाने में पहुँचता तो पसीने से तर-बतर रहता; लेकिन आराम करने की आदत नहीं थी। थैला रखते ही वह हम लोगों को लेकर किसी मैदान में निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरहे गाकर सुनाता और कभी-कभी कहानियाँ सुनाता। उसे चोरी तथा डाके, मारपीट, भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियाँ याद थीं। मैं कहानियाँ सुनकर विचित्र आनंद में मग्न हो जाता; उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा थे, जो धनी लोगों को लूटकर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे। मुझे उन पर नफरत के बदले श्रद्धा

होती थी।

एक रोज कजाकी को डाक का थैला लेकर आने में देर हो गई। सूर्यास्त हो गया और वह दिखलाई नहीं पड़ा। मैं खोया हुआ सा सड़क पर दूर तक नेत्र फाड़-फाड़कर देखता था; पर वह परिचित रेखा न दिखलाई पड़ती थी। कान लगाकर सुनता था; 'झुन-झुन' की वह आमोदमय ध्वनि नहीं सुनाई देती थी। प्रकाश के साथ मेरी उम्मीद भी मलिन होती जाती थी। उधर से किसी को आते देखता तो पूछता, "कजाकी आता है?" मगर या तो कोई सुनता ही न था या फिर सिर हिला देता था।

अचानक 'झुन-झुन' की आवाज कानों में आई। मुझे अँधेरे में चारों ओर भूत ही दिखलाई देते थे। यहाँ तक कि माताजी के कमरे में ताक पर रखी हुई मिठाई भी अँधेरा हो जाने के पश्चात् मेरे लिए त्याज्य हो जाती थी; लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उसकी ओर जोर से दौड़ा। हाँ, कजाकी ही था। उसे देखते ही मेरी विकलता गुस्से में बदल गई। मैं उसे मारने लगा, फिर रुठ करके अलग खड़ा हो गया।

कजाकी ने हँसकर कहा, "मारोगे तो मैं जो लाया हूँ, वह न दूँगा।"

मैंने साहस करके कहा, "जाओ मत देना, मैं लूँगा भी नहीं।"

कजाकी, "अभी दिखा दूँ, तो फिर दौड़कर गोद में उठा लोगे।"

मैंने पिघलकर कहा, "अच्छा, दिखा दो।"

कजाकी, "तो आकर मेरे कंधे के ऊपर बैठ जाओ, भाग चलूँ। आज काफी देर हो गई है। बाबूजी गुस्सा हो रहे होंगे।"

मैंने अकड़कर कहा, "पहले दिखा तो दो।"

मेरी विजय हुई। यदि कजाकी को देर न होती और वह एक मिनट भी और रुक सकता, तो शायद पासा पलट जाता। उसने कोई चीज दिखाई, जिसे वह एक हाथ से सीने से चिपकाए हुए था। लंबा मुँह था, दो आँखें चमक रही थीं।

मैंने उसे भागकर कजाकी की गोद से ले लिया। यह हिरन का बच्चा था। आह! मेरी उस प्रसन्नता का कौन अनुमान करेगा? तब से कठिन परीक्षाएँ पास कीं, अच्छा पद भी पाया, रायबहादुर भी हुआ, मगर वह खुशी फिर भी न हासिल हुई। मैं उसे गोद में लिये, उसके कोमल स्पर्श का मजा उठाता हुआ घर की ओर दौड़ा। कजाकी को आने में क्यों इतनी देर हुई, इसका विचार ही न रहा।

मैंने पूछा, "यह कहाँ पर मिला कजाकी?"

कजाकी, "भैया, यहाँ से थोड़ी दूरी पर एक छोटा सा वन है, उसमें बहुत से हिरन हैं। मेरा बहुत दिल चाहता था कि कोई बच्चा मिल जाए तो तुम्हें दूँ। आज यह बच्चा हिरनों के झुंड

के साथ दिखलाई दिया। मैं झुंड की तरफ दौड़ा तो बहुत दूर निकल गए, यही पीछे रह गया। मैंने इसे पकड़ लिया और इसी से इतनी देर हुई।"

इस तरह बात करते हम दोनों डाकखाने पहुँचे। बाबूजी ने मुझे न देखा, हिरन के बच्चे को भी न देखा, कजाकी पर ही उनकी दृष्टि पड़ी। बिगड़कर बोले, "आज इतनी देर कहाँ लगाई? अब थैला लेकर आया है, उसे लेकर मैं क्या करूँ? डाक तो चली गई। बता, तूने इतनी देर कहाँ पर लगाई?"

कजाकी के मुख से आवाज न निकली।

बाबूजी बोले, "तुझे शायद अब नौकरी नहीं करनी है। नीच है न, पेट भरा तो मोटा हो गया। जब भूखों मरने लगेगा तो नेत्र खुलेंगे।"

कजाकी खामोश खड़ा रहा।

बाबूजी का गुस्सा और बढ़ा। बोले, "अच्छा, थैला रख दे और अपने घर की राह ले। सूअर, अब डाक लेकर आया है। तेरा क्या बिगड़ेगा, जहाँ पर चाहेगा, मजूरी कर लेगा। मार्थे पर मेरे आएगी, उत्तर तो मुझसे तलब होगा।"

कजाकी ने रूँआसा होकर कहा, "हुजूर, अब कभी देर नहीं होगी।"

बाबूजी, "आज क्यों देर की, इसका उत्तर दे?"

कजाकी के पास इसका कोई जवाब न था। आश्चर्य तो यह था कि मेरी भी जबान बंद हो गई। बाबूजी बड़े क्रोधी थे। उन्हें काम करना पड़ता था, इसी से बात-बात पर झुँझला पड़ते थे। मैं तो उनके सम्मुख कभी जाता ही न था। वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे। घर में सिर्फ दो बार घंटे-घंटे भर के लिए भोजन करने आते थे, शेष सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे। उन्होंने बार-बार एक सहकारी के लिए अफसरों से प्रार्थना की थी, पर इसका असर न हुआ था। यहाँ तक कि तातील (छुट्टी) के दिन भी बाबूजी दफ्तर ही में रहते थे। सिर्फ माताजी उनका गुस्सा शांत करना जानती थीं। पर वह दफ्तर में कैसे आती? बेचारा कजाकी उसी समय मेरे देखते-देखते निकाल दिया गया। उसका बल्लम, चपरास और साफा छीन लिया गया और उसे डाकखाने से निकल जाने का नादिरी आदेश सुना दिया। आह! उस वक्त मेरा ऐसा दिल चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती तो कजाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि तुम्हारे निकाल देने से कजाकी का बाल भी बाँका नहीं हुआ। किसी योद्धा को अपनी तलवार पर जितना गर्व होता है, उतना ही गर्व कजाकी को अपनी चपरासी पर था। जब वह चपरासी खोलने लगा तो उसके हाथ काँप रहे थे और नेत्रों से आँसू बह रहे थे, और इस सारे उपद्रव की जड़ वह कोमल चीज थी, जो मेरी गोद में मुँह छिपाए ऐसे चैन से बैठी हुई थी मानो माता की गोद में हो। जब कजाकी चला तो मैं आहिस्ता-आहिस्ता उसके पीछे चला। मेरे घर के दरवाजे पर आकर कजाकी ने कहा, "भैया, अब घर जाओ। साँझ हो गई।"

मैं खामोश खड़ा अपने आँसुओं के वेग को सारी ताकत से दबा रहा था। कजाकी फिर बोला, "भैया, मैं कहीं बाहर थोड़े ही चला जाऊँगा, फिर आऊँगा तथा तुम्हें कंधे पर बैठाकर कुदाऊँगा, बाबूजी ने नौकरी ले ली है तो क्या इतना भी न करने देंगे! तुमको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा, भैया! जाकर अम्मा से कह दो, कजाकी जाता है। उसका कहा-सुना क्षमा करें।"

मैं दौड़ा हुआ घर गया, किंतु अम्माजी से कुछ कहने के बदले बिलख-बिलखकर रोने लगा। अम्माजी किचन के बाहर निकलकर पूछने लगी, "क्या हुआ बेटा? किसने मारा! बाबूजी ने भी कुछ कहा है? अच्छा, रह तो जाओ, आज घर आते हैं, पूछती हूँ। जब देखो, मेरे लड़के को मारा करते हैं। खामोश रहो बेटा, अब तुम उनके पास कभी न जाना।"

मैंने बड़ी कठिनता से आवाज सँभालकर कहा, "कजाकी!"

अम्मा ने समझा, कजाकी ने मारा है कहने लगी, "अच्छा, आने दो कजाकी को, देखो, खड़े खड़े निकलवा देती हूँ। हरकारा होकर मेरे राजा पुत्र को मारे! आज ही तो साफा, बल्लम, सब छिनवाए लेती हूँ। वाह!"

मैंने शीघ्रता से कहा, "नहीं, कजाकी ने नहीं मारा। बाबूजी ने उसे निकाल दिया है। उसका साफा, बल्लम छीन लिया, चपरास भी ले ली।"

अम्मा, "यह तुम्हारे बाबूजी ने बहुत बुरा किया। वह बेचारा अपने कार्य में इतना सतर्क रहता है, फिर उसे क्यों निकाला?"

मैंने बताया, "आज उसे देर हो गई थी।"

इतना कहकर हिरन के बच्चे को गोद से उतार दिया। घर में उसके भाग जाने का डर न था। अब तक अम्माजी की निगाह भी उस पर न पड़ी थी। उसे फुदकते देखकर वह अचानक चौंक पड़ी और लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया कि कहीं यह भयानक जीव मुझे काट न खाए! मैं कहाँ तो फूट-फूटकर रो रहा था और कहाँ अम्मा की घबराहट देखकर खिलखिलाकर हँसने लगा। अम्मा, "अरे, यह तो हिरन का बच्चा है! कहाँ मिला?"

मैंने हिरन के बच्चे का इतिहास और उसका भीषण अंजाम आदि से अंत तक कह सुनाया, "अम्मा, यह इतना तेज भागता था कि कोई अन्य होता तो पकड़ ही न सकता। सन्-सन् हवा की तरह उड़ता चला जाता था। कजाकी पाँच-छह घंटे तक इसके पीछे दौड़ता रहा, तब कहीं जाकर बच्चा मिला। अम्माजी, कजाकी की भाँति कोई संसार भर में नहीं दौड़ सकता, इसी से तो देर हो गई। इसलिए बाबूजी ने बेचारे को निकाल दिया, चपरास, साफा, बल्लम, सबकुछ छीन लिया। अब बेचारा क्या करेगा? भूखों मर जाएगा।"

अम्मा ने पूछा, "कहाँ है कजाकी, जरा उसे बुलाकर तो लाओ।"

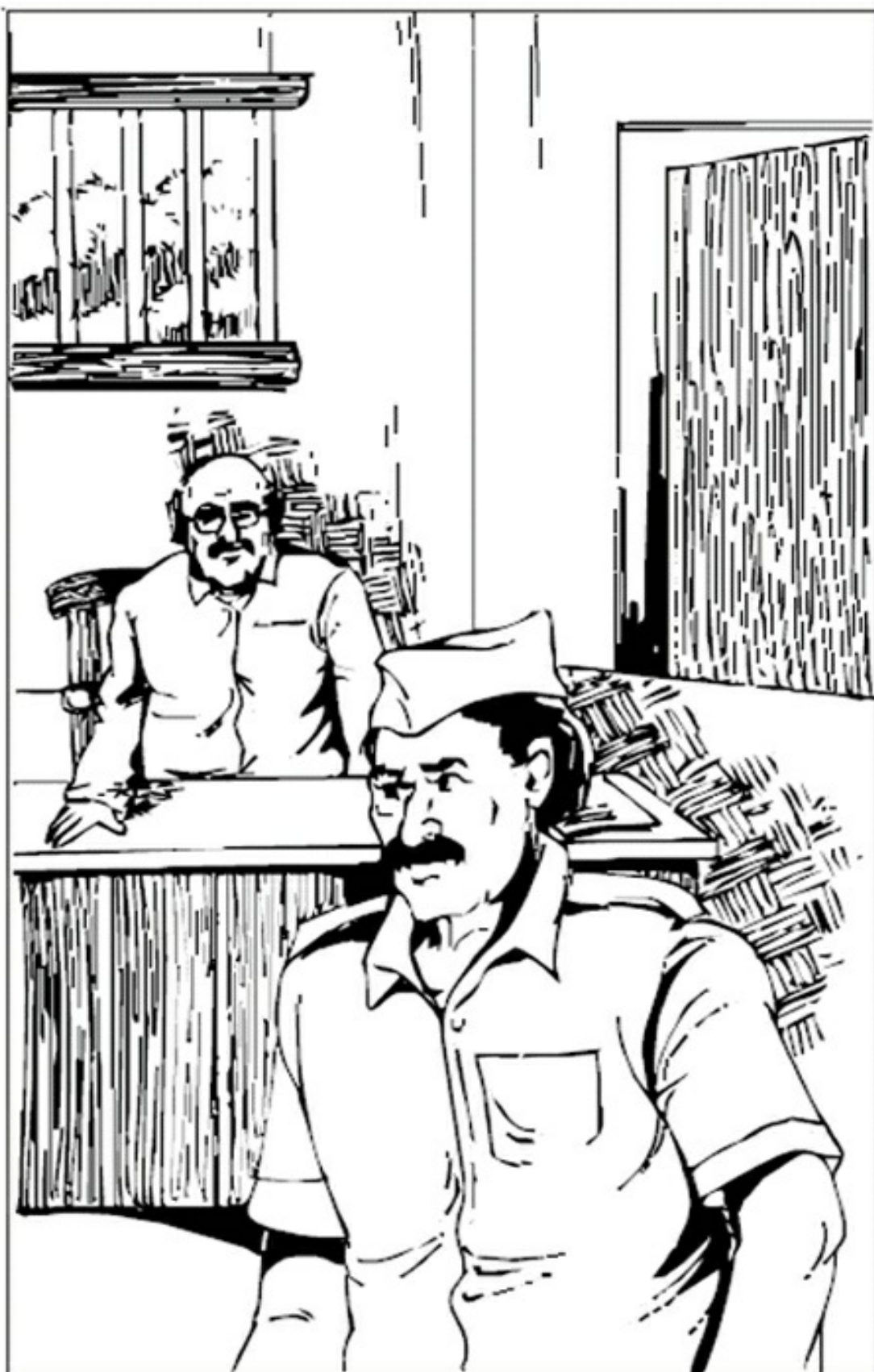
मैंने कहा, "बाहर तो खड़ा हूँ। कहता था, अम्माजी से मेरा कहा-सुना माफ करवा देना।"

अब तक अम्माजी मेरे हाल को मजाक समझ रही थीं। शायद वह समझती थीं कि बाबूजी ने कजाकी को डाँटा होगा। मगर मेरा अंतिम वाक्य सुनकर संशय हुआ कि वाकई कजाकी बरखास्त तो नहीं कर दिया गया। बाहर आकर 'कजाकी! कजाकी' पुकारने लगीं, किंतु कजाकी का कहीं पता नहीं था। मैंने बार-बार पुकारा, मगर कजाकी वहाँ न था।

भोजन तो मैंने खा लिया, बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खासकर जब रबड़ी भी सामने हो। लेकिन बड़ी रात तक पड़े-पड़े सोचता रहा, मेरे पास रुपए होते तो एक लाख रुपए कजाकी को दे देता और कहता, 'बाबूजी से कभी नहीं बोलना। बेचारा भूखों मर जाएगा! देखूँ, कल आता है कि नहीं। अब वह क्या करेगा आकर? लेकिन आने को तो कह गया है। मैं कल उसे अपने साथ खाना खिलाऊँगा।'

यही हवाई किले बनाते हुए मुझे नींद आ गई।

दूसरे रोज मैं दिन भर अपने हिरन के बच्चे की सेवा-सत्कार में व्यस्त रहा। पहले उसका नामकरण संस्कार हुआ और 'मुबू' नाम रखा गया, फिर मैंने उसका अपने सब दोस्तों और सहपाठियों से परिचय कराया। दिन भर मैं वह मुझसे इतना हिल गया कि मेरे पीछे-पीछे भागने लगा। इतनी ही देर में मैंने उसे अपनी जिंदगी में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया। अपने भविष्य में बनने वाले विशाल भवन में उसके लिए अलग कमरा बनाने का भी फैसला कर लिया; चारपाई, सैर करने की फिटन आदि की भी योजना बना ली।



लेकिन शाम होते ही मैं सबकुछ छोड़-छाड़कर सड़क पर जा खड़ा हुआ और कजाकी की बाट देखने लगा। जानता था कि कजाकी निकाल दिया गया है, अब उसे यहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं रही, फिर भी न जाने क्यों मुझे यह उम्मीद हो रही थी कि वह आ रहा है। अचानक मुझे खयाल आया कि कजाकी भूखों मर रहा होगा। मैं फौरन घर आया। अम्मा दीया-बत्ती कर रही थीं। मैंने चुपके से एक टोकरी में आटा निकाला। आटा हाथों में लपेटे हुए टोकरी से गिरते आटे की एक लकीर बनाता हुआ भागा। जाकर रास्ते पर खड़ा हुआ ही था कि कजाकी सामने से आता दिखलाई दिया। उसके निकट बल्लम भी था, कमर में चपरास भी थी, सिर पर साफा भी बाँधा हुआ था। बल्लम में डाक का थैला भी बाँधा हुआ था। मैं भागकर उसकी कमर में चिपट गया और हैरान होकर बोला, "तुम्हें चपरास और बल्लम कहाँ से मिल गया कजाकी?"

कजाकी ने मुझे उठाकर कंधे पर बिठाते हुए कहा, "वह चपरास किस काम की थी भैया? वह तो गुलामी की चपरास थी, यह पुरानी प्रसन्नता की चपरास है। पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा सेवक हूँ।"

यह कहते-कहते उसकी दृष्टि टोकरी पर पड़ी, जो वहीं रखी थी। बोला, "वह आटा कैसा है, भैया?"

मैंने झिझकते हुए कहा, "तुम्हारे ही लिए तो लाया हूँ। तुम भूखे होगे, आज क्या खाया होगा?"

कजाकी की आँखें तो मैं नहीं देख सकता, उसके कंधे पर बैठा हुआ था। हाँ, उसकी आवाज से महसूस हुआ कि उसका गला भर आया है। बोला, "भैया, क्या रूखी ही रोटियाँ खाऊँगा? दाल, नमक, घी और कुछ नहीं है।" मैं अपनी भूल पर काफी शर्मिंदा हुआ। सच तो है, बेचारा रूखी रोटियाँ खाएगा? लेकिन नमक, दाल, घी कैसे लाऊँ? अब तो अम्मा रसोई में होंगी। आटा लेकर तो किसी तरह भाग आया था (अभी तक मुझे न पता था कि मेरी चोरी पकड़ ली गई है। आटे की लकीर ने सुराग दे दिया था।) अब ये तीन-तीन वस्तुएँ कैसे लाऊँगा? अम्मा से माँगूँगा तो कभी न देंगी। एक-एक पैसे के लिए तो घंटों रुलाती हैं, इतनी सारी वस्तुएँ क्यों देने लगी? एकाएक मुझे एक बात याद आई। मैंने अपनी पुस्तकों के बस्ते में कई आने पैसे रख छोड़े थे। मुझे पैसे इकट्ठा करके रखने में बड़ा आनंद आता था। मालूम नहीं अब वह आदत क्यों बदल गई! अब भी वही स्थिति होती तो शायद इतना फाकेमस्त रहता। बाबूजी मुझे प्यार तो कभी नहीं करते थे, पर पैसे खर्च देते थे, शायद अपने कार्य में व्यस्त रहने के कारण, मुझसे पिंड छुड़ाने के लिए इसी नुस्खे को सबसे सरल समझते थे। इनकार करने में रौने और मचलने का भय था। इस विघ्न को वह दूर ही से टाल देते थे। अम्माजी का स्वभाव इससे ठीक प्रतिकूल था। उन्हें मेरे रौने तथा मचलने से किसी काम में बाधा पड़ने का डर न था। आदमी लेटे-लेटे दिन भर रौना सुन सकता है, हिसाब लगाते हुए जोर की आवाज से ध्यान बँट जाता है। अम्मा मुझे प्रेम तो बहुत करती थीं, पर पैसे का नाम सुनते ही उनकी तयोरियाँ बदल जाती थीं। मेरे पास पुस्तकें न थीं। हाँ, एक बस्ता था, जिसमें डाकखाने के दो-चार फार्म तह करके किताब के

रूप में रखे हुए थे। मैंने सोचा-दाल, नमक और घी के लिए क्या उतने पैसे काफी नहीं होंगे? मेरी तो मुट्ठी में नहीं आते। यह तय करके मैंने कहा, "अच्छा, मुझे उतार दो, मैं दाल और नमक ला दूँ, लेकिन रोज आया करोगे न?"

कजाकी, "भैया, खाने को दोगे तो क्यों नहीं आऊँगा।"

मैंने कहा, "मैं प्रतिदिन खाने को दूँगा।"

कजाकी बोला, "तो मैं रोज आऊँगा।"

मैं नीचे उतरा तथा दौड़कर सारी पूँजी उठा लाया। कजाकी को रोज बुलाने के लिए उस समय मेरे पास कोहनूर हीरा भी होता तो उसकी भेंट करने में मुझे पसोपेश न होता।

कजाकी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "ये पैसे कहाँ से पाए भैया?"

मैंने गर्वित होकर कहा, "मेरे ही तो हैं।"

कजाकी, "तुम्हारी अम्माजी तुमको मारेंगी, कहेंगी, कजाकी ने बहलाकर मँगवा लिये होंगे। भैया, इन पसों की मिठाई ले लेना तथा मटके में रख देना। मैं भूखों नहीं मरता। मेरे दो हाथ हैं। मैं भला कभी भूखों मर सकता हूँ?"

मैंने बहुत कहा कि पैसे मेरे हैं, किंतु कजाकी ने न लिये। उसने बड़ी देर तक इधर-उधर सँवर करवाई, गीत सुनाए और मुझे घर पहुँचाकर चला गया। मेरे दरवाजे पर आटे की टोकरी भी रख दी।

मैंने घर में पग रखा ही था कि अम्माजी ने डाँटकर कहा, "क्यों रे चोर! तू आटा कहाँ ले गया था? अब चोरी करना सीख गया? बता, किसको आटा दे आया, नहीं तो मैं तेरी खाल उधेड़कर रख दूँगी।"

मेरी नानी मर गई। अम्मा गुस्से में सिंहनी हो जाती थीं। सिटपिटाकर बोला, "किसी को भी नहीं दिया।"

अम्मा, "तूने आटा नहीं निकाला? देख, कितना आटा पूरे आँगन में बिखरा पड़ा है?"

मैं खामोश खड़ा था। वह कितना ही धमकाती थीं, पुचकारती थीं, पर मेरी जबान न खुलती थी। आने वाली मुसीबत के भय से प्राण सूख रहे थे। यहाँ तक कि यह भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि बिगड़ती क्यों हो, आटा तो द्वार पर रखा हुआ है, और न उठाकर लाते ही बनता था, मानो क्रिया-शक्ति ही गायब हो गई हो, मानो पावों में हिलने की सामर्थ्य न रही हो।

सहसा कजाकी ने आवाज लगाई, "बहूजी, आटा द्वार पर रखा हुआ है। भैया मुझे देने को ले गए थे।"

यह सुनते ही अम्मा दरवाजे की ओर चली गई। कजाकी से वह परदा न करती थीं, उन्होंने कजाकी से कोई बात की अथवा नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; लेकिन अम्माजी खाली टोकरी लेकर घर में आईं, फिर कोठरी में जाकर संदूक से कुछ निकाला और दरवाजे की ओर गई।

मैंने देखा कि उनकी मुट्ठी बंद थी। अब मुझे वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। अम्माजी के पीछे-पीछे मैं भी गया। अम्मा ने दरवाजे पर कई बार पुकारा, मगर कजाकी वहाँ से चला गया था।

मैंने बड़ी व्याकुलता से कहा, "मैं बुलाकर लाऊँ, अम्माजी?" अम्माजी ने किवाड़ बंद करते हुए कहा, "तुम अँधेरे में कहाँ जाओगे, अभी तो यहीं खड़ा हुआ था। मैंने कहा कि यहाँ रहना मैं आती हूँ, तब तक न जाने कहाँ खिसक गया। बड़ा संकोची लड़का है, आटा तो लेता ही नहीं था। न जाने बेचारे के मकान में कुछ खाने को है कि नहीं। रुपए लाई थी कि दे दूँगी, पर न जाने कहाँ चला गया।" अब तो मुझे भी थोड़ा साहस हुआ। मैंने अपनी चोरी की पूरी कहानी कह डाली। बच्चों के साथ समझदार बच्चे बनकर माँ-बाप उन पर जितना प्रभाव डाल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उतने बूढ़े बनकर नहीं।

अम्माजी ने कहा, "तुमने मुझसे पूछ क्यों नहीं लिया? क्या मैं कजाकी को थोड़ा सा आटा नहीं देती?"

मैंने इसका जवाब न दिया। दिल ने कहा, 'इस वक्त तुम्हें कजाकी पर दया आ गई है, जो चाहे दे डालो।' किंतु मैं माँगता तो मारने दौड़तीं। हाँ, यह सोचकर चित्त खुश हुआ कि अब कजाकी भूखा न मरेगा। अम्माजी उसे रोज खाने को देंगी और वह नित्य मुझे कंधे पर बिठाकर सैर कराएगा।

दूसरे दिन मैं दिन भर मुन्नू के साथ खेलता रहा। शाम को सड़क पर जाकर खड़ा हो गया, लेकिन अँधेरा हो गया और कजाकी का कहीं पता नहीं।

दीये जल गए, मार्ग में सन्नाटा छा गया, पर कजाकी न आया।

मैं रोता हुआ घर आया। अम्माजी ने कहा, "क्यों रोते हो, बेटा? क्या कजाकी नहीं आया?"

मैं और जोर से रोने लगा। अम्माजी ने मुझे सीने से लगा लिया। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उनका कंठ भी रुँआसा हो गया है।

उन्होंने कहा, "बेटा, शांत हो जाओ, मैं कल किसी हरकारे को भेजकर कजाकी को बुलाऊँगी।"

मैं रोते-रोते सो गया। सवेरे जैसे ही आँखें खुलीं, मैंने अम्माजी से कहा, "कजाकी को बुलवा दो।"

अम्मा ने कहा, "आदमी गया है, बेटा! कजाकी आता होगा।"

मैं प्रसन्न होकर खेलने लगा। मुझे मालूम था कि अम्माजी जो बात कहती हैं, उसे पूरा अवश्य करती हैं। उन्होंने सबेरे ही एक हरकारे को भेज दिया था। दस बजे जब मैं मुन्नु को लिये हुए घर आया, मालूम हुआ कि कजाकी अपने घर पर नहीं मिला। वह रात को भी घर नहीं गया था। उसकी स्त्री रो रही थी कि न जाने कहाँ चले गए। उसे डर था कि वह कहीं भाग गया है।

बालकों का मन कितना कोमल होता है, इसका अनुमान दूसरा नहीं कर सकता। उनमें भावों को जाहिर करने के लिए शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि कौन सी बात उन्हें विकल कर रही है, कौन सा काँटा उनके दिल में खटक रहा है, क्यों बार-बार रोना आता है, क्यों वे हृदय मारे बैठे रहते हैं, क्यों खेलने में मन नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी। कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुँचता। आँखें कजाकी को तलाश कर रही थीं। वह कहाँ चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया?

तीसरे पहर को मैं खोया हुआ सा सड़क पर खड़ा था। अचानक मैंने कजाकी को एक गली में देखा। हाँ, कजाकी ही था। मैं उसकी तरफ चिल्लाता हुआ दौड़ा, पर गली में उसका पता नहीं था, न जाने किधर गायब हो गया। मैंने गली के इस सिरे से उस सिरे तक देखा, लेकिन कहीं कजाकी की गंध तक न मिली।

घर जाकर मैंने अम्माजी से यह बात कही। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह यह बात सुनकर बहुत फिक्रमंद हो गई थीं।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कजाकी नहीं दिखाई दिया। मैं भी अब उसे कुछ-कुछ भूलने लगा। बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर भी हो जाते हैं। जिस खिलाँने पर जान देते हैं, उसी को दो-चार दिन बाद पटककर तोड़ भी डालते हैं।

दस-बारह रोज और बीत गए। दोपहर का समय था। बाबूजी खाना खा रहे थे। मैं मुन्नु के पाँवों में पीनस की पैजनियाँ बाँध रहा था। एक औरत घूँघट निकाले हुए आई और आँगन में खड़ी हो गई। उसके वस्त्र फटे हुए और मैले थे, पर गौरी सुंदर औरत थी। उसने मुझसे पूछा, "भैया, बहूजी कहाँ हैं?"

मैंने उसके निकट जाकर मुँह देखते हुए कहा, "तुम कौन हो, क्या बेचती हो?"

औरत, "कुछ बेचती नहीं हूँ, बस तुम्हारे लिए ये कमलगट्टे लाई हूँ।"

भैया, तुम्हें तो कमलगट्टे बड़े अच्छे लगते हैं न?"

मैंने उसके हाथ में लटकती हुई पोटली को उत्सुक आँखों से देखकर पूछा, "कहाँ से लाई हो? देखें।"

स्त्री,"तुम्हारे हरकारे ने भेजा हैं, भैया!"

मैंने उछलकर कहा,"कजाकी ने?"

स्त्री ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा और पोटली खोलने लगी। इतने में अम्माजी भी चौंके से निकलकर आई। उसने अम्मा के पैरों का स्पर्श किया। अम्मा ने पूछा,"तू कजाकी की पत्नी है?"

औरत ने अपना सिर झुका लिया।

अम्मा,"आजकल कजाकी क्या कर रहा है?"

औरत ने रोकर कहा,"बहूजी, जिस रोज से आपके पास से आटा लेकर गए हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हुए हैं। बस भैया-भैया किया करते हैं। भैया में उनका मन बसा रहता है। चौंक-चौंककर भैया-भैया कहते हुए दरवाजे की ओर दौड़ते हैं। न जाने उन्हें क्या हो गया है, बहूजी! एक दिन भी कुछ नहीं कहा, न सुना, घर से चल दिए और एक गली में छिपकर भैया को देखते रहे। जिस समय भैया ने उन्हें देख लिया, तो भागे। तुम्हारे पास आते हुए शरमाते हैं।" मैंने कहा,"हाँ-हाँ, मैंने उस रोज तुमसे जो कहा था, अम्माजी!"

अम्मा,"घर में कुछ खाने-पीने को भी है?"

औरत,"हाँ बहूजी, तुम्हारे आशीर्वाद से खाने-पीने का कष्ट नहीं है। आज सुबह उठे और तालाब की तरफ चले गए। बहुत कहती रही, बाहर मत जाओ, हवा लग जाएगी, लेकिन न माने! मारे कमजोरी के पैर काँपने लगते हैं, मगर तालाब में घुसकर ये कमलगट्टे तोड़ लाए। तब मुझसे कहा, ले जा, और भैया को दे आ। उन्हें कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं, कुशल-क्षेम भी पूछती आना।"

मैंने पोटली से कमलगट्टे निकाल लिए थे तथा मजे से चख रहा था। अम्मा ने बहुत आँखें दिखाईं, किंतु यहाँ इतना सब्र कहाँ!

अम्मा ने कहा,"कह देना सब कुशल-क्षेम है।"

मैंने कहा,"यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है। नहीं जाओगे तो फिर तुमसे कभी न बोलेंगे, हाँ।"

बाबूजी खाना खाकर निकल आए थे। तौलिये से हाथ-मुँह पोंछते हुए कहने लगे,"और यह भी कह देना कि साहब ने तुम को बहाल कर दिया है। शीघ्र जाओ, नहीं तो कोई दूसरा व्यक्ति रख लिया जाएगा।"

औरत ने अपना वस्त्र उठाया और चली गई। अम्मा ने बहुत पुकारा, मगर वह न रुकी। शायद अम्माजी उसे कुछ देना चाहती थीं। अम्मा ने पूछा,"वाकई बहाल हो गया?"

बाबूजी, "और क्या झूठे ही बुला रहा हूँ। मैंने तो पाँचवें ही रोज बहाली की रिपोर्ट की थी।"

अम्मा, "यह तुमने बड़ा अच्छा किया।"

बाबूजी, "उसकी बीमारी की भी यही दवा है।"

प्रातःकाल मैं उठा, तो क्या देखता हूँ कि कजाकी लाठी टेकता हुआ चला आ रहा है। वह बहुत कमजोर हो गया था, मालूम होता था, बूढ़ा हो गया है। हरा-भरा वृक्ष सूखकर टूँठ हो गया था। मैं उसकी ओर दौड़ा और उसकी कमर से चिपट गया। कजाकी ने मेरे गाल चूमे और मुझे उठाकर कंधे पर बैठाने की कोशिश करने लगा; पर मैं न उठ सका। तब वह जानवरों की भाँति भूमि पर हाथों-घुटनों के बल खड़ा हो गया। और मैं उसकी पीठ पर सवार होकर डाकखाने की ओर चला। मैं उस समय फूला न समाता था और शायद कजाकी मुझसे भी अधिक खुश था।

बाबूजी ने कहा, "कजाकी, तुम बहाल हो गए। अब कभी देर मत करना।" कजाकी रोता हुआ पिताजी के चरणों में गिर पड़ा; मगर शायद मेरे भाग्य में दोनों सुख भोगना नहीं लिखा था, मुन्नू मिला, तो कजाकी छूटा; कजाकी आया तो मुन्नू हाथ से गया और ऐसा गया कि आज तक उसके जाने का कष्ट है। मुन्नू मेरी ही थाली में खाता था। जब तक मैं खाने नहीं बैठूँ, वह भी कुछ नहीं खाता था। उसे भात में बहुत ही रुचि थी; किंतु जब तक खूब घी न पड़ा हो, उसे संतोष न होता था। वह मेरे ही साथ सोता था और मेरे ही साथ उठता भी था। सफाई तो उसे इतनी पसंद थी कि मल-मूत्र त्याग करने के लिए घर से बाहर मैदान में ही निकल जाता था, कुत्तों को घर में नहीं घुसने देता था। कुत्ते को देखते ही थाली से उठ जाता तथा उन्हें दौड़ाकर घर से बाहर निकाल देता था।

कजाकी को डाकखाने में छोड़कर जब मैं खाना खाने लगा तो मुन्नू भी आ बैठा। अभी दो-चार ही कौर खाए थे कि तभी एक बड़ा सा झबरा कुत्ता आँगन में दिखाई दिया। मुन्नू उसे देखते ही भागा। दूसरे घर में जाकर कुत्ता चूहा हो जाता है। झबरा कुत्ता उसे आते देखकर दौड़ा। मुन्नू को उसे घर से निकालकर भी इत्मीनान न हुआ। वह उसे घर के बाहर मैदान में भी दौड़ाने लगा। मुन्नू को शायद ध्यान न रहा कि यहाँ मेरी अमलदारी नहीं है। वह उस इलाके में पहुँच गया था, जहाँ झबरे का भी उतना ही अधिकार था जितना मुन्नू का। मुन्नू कुत्ते को भगाते-भगाते शायद अपने बाहुबल पर गर्व करने लगा था। वह यह नहीं समझता था कि घर में उसकी पीठ पर घर के स्वामी का भय कार्य किया करता है। झबरे ने इस मैदान में आते ही उलटकर मुन्नू की गरदन दबा दी। बेचारे मुन्नू के मुख से आवाज तक न निकली। जब पड़ोसियों ने शोर मचाया तो मैं भागा। देखा तो मुन्नू मरा हुआ पड़ा है और झबरे का कहीं भी पता नहीं।



गरीब की हाय

मुंशी रामसेवक भौंहे चढ़ाए हुए घर से निकले और बोले, "इस जीने से तो मरना भला है। मृत्यु को प्रायः इस तरह से जितने निमंत्रण दिए जाते हैं, यदि वह सबको स्वीकार करती तो आज सारा संसार उजाड़ दिखाई देता।"

मुंशी रामसेवक चाँदपुर गाँव के एक बड़े रईस थे। रईसों के सभी गुण इनमें भरपूर थे। मानव चरित्र की दुर्बलताएँ उनके जीवन का आधार थीं। वह नित्य मुंसिफी कचहरी के हाते में एक नीम के पेड़ के नीचे कागजों का बस्ता खोले एक टूटी सी चौकी पर बैठे दिखाई देते थे। किसी ने कभी उन्हें किसी इजलास पर कानूनी बहस या मुकदमे की पैरवी करते नहीं देखा। परंतु उन्हें सब मुख्तार साहब कहकर पुकारते थे। चाहे तूफान आए, पानी बरसे, ओले गिरें, पर मुख्तार साहब वहाँ से टस-से-मस न होते। जब वह कचहरी चलते तो देहातियों के झुंड के झुंड उनके साथ हो लेते। चारों ओर से उन पर विश्वास और आदर की दृष्टि पड़ती। सबमें प्रसिद्ध था कि उनकी जीभ पर सरस्वती विराजती है। इसे वकालत कहो या मुख्तारी, परंतु वह केवल कुल-मर्यादा की प्रतिष्ठा का पालन था। आमदनी अधिक न होती थी। चाँदी के सिक्कों की तो चर्चा ही क्या, कभी-कभी ताँबे के सिक्के भी निर्भय उनके पास आने में हिचकते थे। मुंशीजी की कानूनदानी में कोई संदेह न था। परंतु पास के बखेड़े ने उन्हें विवश कर दिया था। खैर जो हो, उनका यह पेशा केवल प्रतिष्ठा-पालन के निमित्त था। नहीं तो उनके निर्वाह का मुख्य साधन आस-पास की अनाथ, पर खाने-पीने में सुखी विधवाओं और भोले-भाले किंतु धनी वृद्धों की श्रद्धा थी। विधवाएँ अपना रुपया उनके यहाँ अमानत रखतीं। बूढ़े अपने कपूतों के डर से अपना धन उन्हें सौंप देते। पर रुपया एक बार मुट्ठी में जाकर फिर निकलना भूल जाता था। वह जरूरत पड़ने पर कभी-कभी कर्ज ले लेते थे। भला बिना कर्ज लिये किसी का काम चल सकता है? भोर की साँझ के करार पर रुपया लेते, पर साँझ कभी नहीं आती थी। सारांश ये कि मुंशीजी कर्ज लेकर देना सीखे नहीं थे। यह उनकी कुल प्रथा थी। यही सब मामले बहुधा मुंशीजी के सुख-चैन में विद्युत डालते थे। कानून और अदालत का तो उन्हें कोई डर न था। इस मैदान में उनका सामना करना पानी में मगर से लड़ना था। परंतु जब कोई दुष्ट उनसे भिड़ जाता, उनकी ईमानदारी पर संदेह करता और उनके मुँह पर बुरा-भला कहने पर उतारु हो जाता, तब

मुंशीजी के हृदय पर बड़ी चोट लगती। इस प्रकार की दुर्घटनाएँ प्रायः होती रहती थीं। हर जगह ऐसे ओछे रहते हैं, जिन्हें दूसरों को नीचा दिखाने में आनंद आता है। ऐसे ही लोगों का सहारा पाकर कभी-कभी छोटे आदमी मुंशीजी के मुँह लग जाते थे। नहीं तो, कुंजड़िन की इतनी मजाल नहीं थी कि उनके आँगन में जाकर उन्हें बुरा-भला कहे। मुंशीजी उसके पुराने ग्राहक थे, बरसों तक उससे साग-भाजी ली थी। यदि दाम न दिया तो कुंजड़िन को संतोष करना चाहिए था। दाम जल्दी या देर से मिल ही जाता। परंतु वह मुँहफट कुंजड़िन दो ही बरसों में घबरा गई और उसने कुछ आने-पैसे के लिए एक प्रतिष्ठित आदमी का पानी उतार लिया। झुँझलाकर मुंशीजी अपने को मृत्यु का कलेवा बनाने पर उतारु हो गए तो इसमें उनका कुछ दोष न था।

इसी गाँव में मूँगा नाम की एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसका पति बर्मा की काली पलटन में हवलदार था और लड़ाई में वहीं मारा गया। सरकार की ओर से उसके अच्छे कामों के बदले मूँगा को पाँच सौ रुपए मिले थे। विधवा स्त्री, जमाना नाजुक था, बेचारी ने ये सब रुपए मुंशी रामसेवक को सौंप दिए, और महीने-महीने थोड़ा-थोड़ा उसमें से माँगकर अपना निर्वाह करती रही।



परंतु अनाथों का क्रोध पटाखे की आवाज है, जिससे बच्चे डर जाते हैं और असर कुछ नहीं होता। अदालत में उसका कुछ जोर न था। न लिखा-पढ़ी थी, न हिसाब-किताब। हाँ, पंचायत से कुछ आसरा था। पंचायत बैठी। कई गाँव के लोग इकट्ठे हुए। मुंशीजी नीयत और मामले के साफ थे। सभा में खड़े होकर पंचों से कहा, "भाइयो! आप सब लोग सत्यपरायण और कुलीन हैं। मैं आप सब साहबों का दास हूँ। आप सब साहबों की उदारता और कृपा से, दया और प्रेम से, मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है। क्या आप लोग सोचते हैं कि मैं इस अनाथिनी और विधवा स्त्री के रुपए हड़प कर गया हूँ?"

पंचों ने एक स्वर में कहा, "नहीं, नहीं! आपसे ऐसा नहीं हो सकता।" रामसेवक, "यदि आप सब सज्जनों का विचार हो कि मैंने रुपया दबा लिया, तो मेरे लिए डूब मरने के सिवा और कोई उपाय नहीं। मैं धनाढ्य नहीं हूँ, न मुझे उदार होने का घमंड है। पर अपनी कलम की कृपा से, आप लोगों की कृपा से किसी का मोहताज नहीं हूँ। क्या मैं ऐसा ओछा हो जाऊँगा कि एक अनाथिनी के रुपए पचा लूँ?"

पंचों ने एक स्वर में कहा, "नहीं-नहीं, आपसे ऐसा नहीं हो सकता। मुँह देखकर टीका काढ़ा जाता है।" पंचों ने मुंशी को छोड़ दिया। पंचायत उठ गई। मूँगा ने आह भर संतोष किया और मन में कहा, 'अच्छा! यहाँ न मिला तो न सही, वहाँ कहाँ जाएगा।'

अब कोई मूँगा का दुःख सुननेवाला और सहायक न था। दरिद्रता से जो कुछ दुःख भोगने पड़ते हैं, वह उसे झेलने पड़े। वह शरीर से पुष्ट थी, चाहती तो परिश्रम कर सकती थी। पर जिस दिन पंचायत पूरी हुई, उसी दिन से उसने काम न करने की कसम खा ली। अब उसे रात-दिन रुपए की रट लगी रहती। उठते-बैठते, सोते-जागते उसे केवल एक काम था, और वह मुंशी रामसेवक का भला मानना। झोंपड़े के दरवाजे पर बैठी हुई रात-दिन उन्हें सच्चे मन से असीसा करती; बहुधा अपनी असीस के वाक्यों में ऐसे कविता के भाव और उपमाओं का व्यवहार करती कि लोग सुनकर अचंभे में आ जाते। धीरे-धीरे मूँगा पगली हो चली। नंगे सिर, नंगे शरीर, हाथ में एक कुल्हाड़ी लिये हुए सुनसान स्थानों में जा बैठती। झोंपड़े के बदले अब वह मरघट पर नदी के किनारे खंडहरों में घूमती दिखाई देती। बिखरी हुई लट्टें, लाल-लाल आँखें, पागलों सा चेहरा, सूखे हुए हाथ-पाँव। उसका यह स्वरूप देखकर लोग डर जाते थे। अब कोई उसे हँसी में भी नहीं छेड़ता। यदि वह कभी गाँव में निकल आई तो स्त्रियाँ घरों के किवाड़ बंद कर लेतीं। पुरुष कतराकर इधर-उधर से निकल जाते और बच्चे चीख मारकर भागते। यदि कोई लड़का भागता न था तो वह मुंशी रामसेवक का सुपुत्र रामगुलाम था। बाप में जो कुछ कोर-कसर रह गई थी, वह बेटे में पूरी हो गई थी। लड़कों का उसके मारे नाक में दम था। गाँव के काने और लँगड़े आदमी उसकी सूरत से चिढ़ते थे और गालियाँ खाने में तो शायद ससुराल में आने वाले दामाद को भी इतना आनंद न आता हो। वह मूँगा के पीछे तालियाँ बजाता, कुत्तों को साथ लिये उस समय तक भागता रहता जब तक वह बेचारी तंग आकर गाँव से निकल न जाती। रुपया-पैसा, होशोहवास खोकर उसे पगली की पदवी मिली और अब वह सचमुच पगली थी। अकेली बैठी अपने आप घंटों बातें किया करती, जिसमें रामसेवक के मांस, हड्डी, चमड़े,

आँखें, कलेजा आदि को खाने, मसलने, नोचने-खसोटने की बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की जाती थी और जब उसकी यह इच्छा सीमा तक पहुँच जाती तो वह रामसेवक के घर की ओर मुँह करके खूब चिल्लाकर और डरावने शब्दों में हाँक लगाती, "तेरा लहू पीऊँगी।"

प्रायः रात के सन्नाटे में यह गुजरती हुई आवाज सुनकर स्त्रियाँ चौंक पड़ती थीं। परंतु इस आवाज से भयानक उसका ठठाकर हँसना था। वह मुंशीजी के लहू पीने की कल्पित खुशी में जोर से हँसा करती थी। इस ठठान से ऐसी आसुरिक उद्वेगता, ऐसी पाशविक उग्रता टपकती थी कि रात को सुनकर लोगों का खून ठंडा हो जाता था। मालूम होता, मानो सैकड़ों उल्लू एक साथ हँस रहे हैं। मुंशी रामसेवक बड़े हाँसले और कलैजे के आदमी थे। न उन्हें दीवानी का डर था, न फौजदारी का, परंतु मूँगा के इन डरावने शब्दों को सुन वह भी सहम जाते। हमें मनुष्य के न्याय का डर न हो, परंतु ईश्वर के न्याय का डर प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वभाव से रहता है। मूँगा का भयानक रात का घूमना रामसेवक के मन में कभी-कभी ऐसी ही भावना उत्पन्न कर देता और उनसे अधिक उनकी स्त्री के मन में। उनकी स्त्री बड़ी चतुर थी। वह इनको इन सब बातों में प्रायः सलाह दिया करती थी। उन लोगों की भूल थी, जो कहते थे कि मुंशीजी की जीभ पर सरस्वती बिराजती है। वह गुण तो उनकी स्त्री को प्राप्त था। बोलने में वह इतनी ही तेज थी, जितना मुंशी लिखने में थे। और यह दोनों स्त्री-पुरुष प्रायः अपनी अवश दशा में सलाह करते कि अब क्या करना चाहिए।

आधी रात का समय था। मुंशीजी नित्य नियम के अनुसार अपनी चिंता दूर करने के लिए शराब के दो-चार घूँट पीकर सो गए थे। यकायक मूँगा ने उनके दरवाजे पर आकर जोर से हाँक लगाई, "तेरा लहू पीऊँगी" और खूब खिलखिलाकर हँसी।

मुंशीजी यह भयावना स्वर सुनकर चौंक पड़े। डर के मारे पैर थर-थर काँपने लगे। कलेजा धक्-धक् करने लगा। दिल पर बहुत जोर डालकर उन्होंने दरवाजा खोला, जाकर नागिन को जगाया। नागिन ने झुँझलाकर कहा,

"क्या कहते हो?" मुंशीजी ने दबी आवाज में कहा, "वह दरवाजे पर आकर खड़ी है।"

नागिन उठ बैठी, "क्या कहती है?"

"तुम्हारा सिर।"

"क्या दरवाजे पर आ गई?"

"हाँ, आवाज नहीं सुनती हो।"

नागिन मूँगा से नहीं, परंतु उसके ध्यान से बहुत डरती थी, तो भी उसे विश्वास था कि मैं बोलने में उसे जरूर नीचा दिखा सकती हूँ। सँभलकर बोली, "कहो तो मैं उससे दो-दो बातें कर लूँ।" परंतु मुंशीजी ने मना कर दिया।

दोनों आदमी पैर दबाए हुए ड्योढ़ी में गए और दरवाजे से झाँककर देखा, मूँगा की धुँधली

मूर्त धरती पर पड़ी थी और उसकी साँस तेजी से चलती सुनाई देती थी। रामसेवक के लहू और मांस की भूख से वह अपना लहू और मांस सुखा चुकी थी। एक बच्चा भी उसे गिरा सकता था, परंतु उससे सारा गाँव थर-थर काँपता। हम जीते मनुष्य से नहीं डरते, पर मुरदे से डरते हैं। रात गुजरी। दरवाजा बंद था, पर मुंशीजी और नागिन ने बैठकर रात काटी। मूँगा भीतर नहीं घुस सकती थी, पर उसकी आवाज को कौन रोक सकता था। मूँगा से अधिक डरावनी उसकी आवाज थी।

भोर को मुंशीजी बाहर निकले और मूँगा से बोले, "यहाँ क्यों पड़ी है?" मूँगा बोली, "तेरा लहू पीऊँगी।"

नागिन ने बल खाकर कहा, "तेरा मुँह झुलस दूँगी।"

पर नागिन के विष ने मूँगा पर कुछ असर न किया। उसने जोर से ठहाका लगाया, नागिन खिसियानी सी हो गई। हँसी के सामने मुँह बंद हो जाता है। मुंशीजी फिर बोले, "यहाँ से उठ जा।"

"न उठूँगी।"

"कब तक पड़ी रहेगी?"

"तेरा लहू पीकर जाऊँगी।"

मुंशीजी की प्रखर लेखनी का यहाँ कुछ जोर न चला और नागिन की आग भरी बातें यहाँ सर्द हो गईं। दोनों घर में जाकर सलाह करने लगे, यह बला कैसे टलेगी, इस आपत्ति से कैसे छुटकारा होगा?

देवी आती है तो बकरे का खून पीकर चली जाती है, पर यह डायन मनुष्य का खून पीने आई है। वह खून, जिसकी अगर एक बूँद भी कलम बनाने के समय निकल पड़ती थी तो अठवारों और महीनों सारे कुनबे को अफसोस रहता, और यह घटना गाँव में घर-घर फैल जाती थी। क्या यही लहू पीकर मूँगा का सूखा शरीर हरा हो जाएगा।

गाँव में यह चर्चा फैल गई, मूँगा मुंशीजी के दरवाजे पर धरना दिए बैठी है। मुंशीजी के अपमान में गाँव वालों को बड़ा मजा आता था। देखते-देखते सैकड़ों आदमियों की भीड़ लग गई। इस दरवाजे पर कभी-कभी भीड़ लगी रहती थी। यह भीड़ रामगुलाम को पसंद न थी। मूँगा पर उसे ऐसा क्रोध आ रहा था कि यदि उसका बस चलता तो वह उसे कुएँ में धकेल देता। इस तरह का विचार उठते ही रामगुलाम के मन में गुदगुदी समा गई और वह बड़ी कठिनता से अपनी हँसी रोक सका। अहा! वह कुएँ में गिरती तो क्या मजे की बात होती। परंतु यह चुड़ैल यहाँ से टलती ही नहीं, क्या करूँ? मुंशीजी के घर में एक गाय थी, जिसे खली, दाना और भूसा तो खूब खिलाया जाता, पर वह सब उसकी हड्डियों में मिल जाता, उसका ढाँचा पुष्ट हो जाता था। रामगुलाम ने उसी गाय का गोबर एक हाँड़ी में घोला और

सबका सब बेचारी मूँगा पर उड़ेल दिया। उसके थोड़े-बहुत छींटे दर्शकों पर भी डाल दिए। बेचारी मूँगा लड़फड़ हो गई और लोग भाग खड़े हुए। कहने लगे, यह मुंशी रामगुलाम का दरवाजा है। यहाँ इसी प्रकार का शिष्टाचार किया जाता है। जल्द भाग चलो, नहीं तो अबके इससे भी बढ़कर खातिर की जाएगी। इधर भीड़ कम हुई, उधर रामगुलाम घर में जाकर खूब हँसा और तालियाँ बजाई। मुंशीजी ने व्यर्थ की भीड़ को ऐसे सहज में और ऐसे सुंदर रूप से हटा देने के उपाय पर अपने सुशील लड़के की पीठ ठोंकी। सब लोग तो चंपत हो गए, पर बेचारी मूँगा ज्यों की त्यों बैठी रह गई।

दोपहर हुई। मूँगा ने कुछ नहीं खाया। साँझ हुई, हजार कहने-सुनने से भी उसने खाना नहीं खाया। गाँव के चौधरी ने बड़ी खुशामद की। यहाँ तक कि मुंशीजी ने हाथ तक जोड़े, पर देवी प्रसन्न न हुई। निदान, मुंशीजी उठकर भीतर चले गए। वह कहते थे कि रुठने वाले को भूख आप ही मना लिया करती है। मूँगा ने यह रात भी बिना दाना-पानी के काट दी। लालाजी और ललाइन ने आज फिर जाग-जागकर भोर किया। आज मूँगा की गरज और हँसी बहुत कम सुनाई पड़ती थी। घरवालों ने समझा, बला टली। सवेरा होते ही जो दरवाजा खोलकर देखा तो वह अचेत पड़ी थी, मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं और उसके प्राणपखेरू उड़ चुके हैं। वह इस दरवाजे पर मरने ही आई थी। जिसने उसके जीवन की जमा-पूँजी हर ली थी, उसी को अपनी जान भी सौंप दी, अपने शरीर की मिट्टी तक उसकी भेंट कर दी। धन से मनुष्य को कितना प्रेम होता है। धन अपनी जान से भी प्यारा होता है। विशेषकर बुढ़ापे में दूण चुकाने के बाद दिन ज्यों-ज्यों पास आते जाते हैं, त्यों-त्यों उसका ब्याज बढ़ता जाता है।

यह कहना यहाँ व्यर्थ है कि गाँव में इस घटना से कैसी हलचल मची और मुंशी रामसेवक कैसे अपमानित हुए! एक छोटे से गाँव में ऐसी असाधारण घटना होने पर जितनी हलचल हो सकती, उससे अधिक ही हुई। मुंशीजी का अपमान जितना होना चाहिए था, उससे बाल बराबर भी कम न हुआ। उनका बचा-खुचा पानी भी इस घटना से चला गया। अब गाँव का चमार भी उनके हाथ का पानी पीने या उन्हें छूने का ख़ादा न था। यदि किसी घर में कोई गाय खूँटे पर मर जाती है तो वह आदमी महीनों द्वार-द्वार भीख माँगता फिरता है। न नाई उसकी हजामत बनाए, न कहार उसका पानी भरे, न कोई उसे छूए, यह गो-हत्या का प्रायश्चित्त है। ब्रह्महत्या का दंड तो इससे भी कड़ा है और इसमें अपमान भी बहुत है। मूँगा यह जानती थी और इसीलिए इस दरवाजे पर आकर मरी थी। वह जानती थी कि मैं जीते जी जो कुछ नहीं कर सकती, मरकर बहुत कुछ कर सकती हूँ। गोबर का उपला जब जलकर खाक हो जाता है, तब साधु-संत उसे माथे पर चढ़ाते हैं। पत्थर का ढेला आग में जलकर आग से अधिक तीखा और मारक हो जाता है।

मुंशी रामसेवक कानूनदां थे। कानून ने उन पर कोई दोष नहीं लगाया था। मूँगा किसी कानूनी दफा के अनुसार न मरी थी। ताजीराते-हिंद में उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता था, इसलिए जो लोग उनसे प्रार्थश्चित्त करवाना चाहते थे, उनकी भारी भूल थी। कुछ हर्ज नहीं, कहार पानी न भरे न सही, वह आप पानी भर लेंगे। अपना काम करने में भला लाज

ही क्या? बला से नाई बाल न बनाएगा। हजामत बनाने का काम ही क्या है? दाढ़ी बहुत सुंदर वस्तु है। दाढ़ी मर्द की शोभा और सिंगार है। और जो फिर बालों से ऐसी घिन होगी तो एक-एक आने में अस्तुरे मिलते हैं। धोबी कपड़ा न धोवेगा, इसकी भी कुछ परवाह नहीं। साबुन तो गली-गली कौड़ियों के मोल आता है। एक बट्टी साबुन में दर्जनों कपड़े ऐसे साफ हो जाते हैं, जैसे बगुले के पर। धोबी क्या खाकर ऐसा साफ कपड़ा धोवेगा? पत्थर पर पटक-पटककर कपड़ों का लत्ता निकाल लेता है। आप पहने, दूसरे को भाड़े पर पहनाए, भट्टी में चढ़ावे, रेह में भिगावे, कपड़ों की तो दुर्गत कर डालता है। तभी तो कुरते दो-तीन साल से अधिक नहीं चलते। नहीं तो दादा हर पाँचवें बरस दो अचकन और दो कुरते बनवाया करते थे। मुंशी रामसेवक और उनकी स्त्री ने दिन भर तो यों ही कहकर अपने मन को समझाया। साँझ होते ही तर्कनाएँ शिथिल हो गईं।

अब उनके मन पर भय ने चढ़ाई की। जैसे-जैसे रात बीतती थी, भय भी बढ़ता जाता था। बाहर का दरवाजा भूल से खुला रह गया था, पर किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि जाकर बंद कर आए। निदान, नागिन ने हाथ में दीया लिया, मुंशीजी ने कुल्हाड़ा, रामगुलाम ने गंडासा, इस ढंग से तीनों चौंकते-हिचकते दरवाजे पर आए। यहाँ मुंशीजी ने बड़ी बहादुरी से काम लिया। उन्होंने निधड़क दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश की। काँपते हुए, पर ऊँची आवाज में नागिन से बोले, "तुम व्यर्थ डरती हो, वह क्या यहाँ बैठी है?" पर उनकी प्यारी नागिन ने उन्हें खींच लिया और झुंझलाकर बोली, "तुम्हारा यही लड़कपन तो अच्छा नहीं।" यह दंगल जीतकर तीनों आदमी रसोई के कमरे में आए और खाना पकने लगा।

मुँगा उनकी आँखों में घुसी हुई थी। अपनी परछाई को देखकर मुँगा का भय होता था। अँधेरे कोनों में बैठी मालूम होती थी। वही हड्डियों का ढाँचा, वही बिखरे बाल, वही पागलपन, वही डरावनी आँखें, मुँगा का नख-शिख दिखाई देता था। इसी कोठरी में आटे-दाल के मटके रखे हुए थे, वहीं कुछ पुराने चिथड़े भी पड़े हुए थे। एक चूहे को भूख ने बेचैन किया (मटकों ने कभी अनाज की सूरत नहीं देखी थी, पर सारे गाँव में मशहूर था कि इस घर के चूहे गजब के डाकू हैं) तो वह उन दोनों की खोज में जो मटकों से कभी नहीं गिरे थे, रेंगता हुआ इस चिथड़े के नीचे आ निकला। कपड़े में खड़खड़ाहट हुई। फैले हुए चिथड़े मुँगा की पतली टाँगें बन गईं, नागिन देखकर झिझकी और चीख उठी। मुंशीजी बदहवास होकर दरवाजे की ओर लपके, रामगुलाम दौड़कर इनकी टाँगों से लिपट गया। चूहा बाहर निकल आया। उसे देखकर इन लोगों के होश ठिकाने हुए। अब मुंशीजी साहस करके मटके की ओर चले। नागिन ने कहा, "रहने भी दो, देख ली तुम्हारी मरदानगी।"

मुंशीजी अपनी प्रिया नागिन के इस अनादर पर बहुत बिगड़े, "क्या तुम समझती हो, मैं डर गया? भला डर की क्या बात थी। मुँगा मर गई। क्या वह बैठी है? मैं कल नहीं दरवाजे के बाहर निकल गया था-तुम रोकती रही, मैं न माना।" मुंशीजी की इस दलील ने नागिन को निरुत्तर कर दिया। कल दरवाजे के बाहर निकल जाना या निकलने की कोशिश करना साधारण काम न था। जिसके साहस का ऐसा प्रमाण मिल चुका है, उसे डरपोक कौन कह सकता है? यह नागिन की हठधर्मी थी। खाना खाकर तीनों आदमी सोने के कमरे में आए,

परंतु मूँगा ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। वे बातें करते थे, दिल बहलाते थे। नागिन ने राजा हरदोल और रानी सारंधा की कहानियाँ कहीं। मुंशीजी ने फौजदारी के कई मुकदमों का हाल कह सुनाया। परंतु इन उपायों से भी मूँगा की मूर्ति उनकी आँखों के सामने से न हटती थी। जरा भी खटखटाहट होती कि तीनों चौंक पड़ते। इधर पत्तियों में सनसनाहट हुई कि उधर तीनों के रोंगटे खड़े हो गए। रह-रहकर धीमी आवाज धरती के भीतर से उनके कानों में आती थी, 'तेरा लहू पीऊँगी।'

आधी रात को नागिन नींद से चौंक पड़ी। वह इन दिनों गर्भवती थी। लाल-लाल आँखों वाली, तेज और नोकीले दाँतों वाली मूँगा उसकी छाती पर बैठी हुई जान पड़ती थी। नागिन चीख उठी। बावली की तरह आँगन में भाग आई और यकायक धरती पर चित्त गिर पड़ी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मुंशीजी भी उसकी चीख सुनकर चौंके, पर डर के मारे आँखें न खुलीं। अंधों की तरह दरवाजा टटोलते रहे। बहुत देर के बाद उन्हें दरवाजा मिला। आँगन में आए। नागिन जमीन पर पड़ी हाथ-पाँव पटक रही थी। उसे उठाकर भीतर लाए, पर रात भर उसने आँखें न खोलीं। भोर को अक-बक बकने लगी। थोड़ी देर बाद ज्वर हो आया। बदन लाल तवा सा हो गया। साँझ होते-होते उसे सन्निपात हो गया और आधी रात के समय जब संसार में सन्नाटा छाया हुआ था, नागिन इस संसार से चल बसी। मूँगा के डर ने उसकी जान ले ली। जब तक मूँगा जीती रही, वह नागिन की फुफकार से सदा डरती रही। पगली होने पर भी उसने कभी नागिन का सामना नहीं किया, पर अपनी जान देकर उसने आज नागिन की जान ली। भय में बड़ी शक्ति है। मनुष्य हवा में एक गिरह भी नहीं लगा सकता, पर इसने हवा में एक संसार रच डाला है।

रात बीत गई। दिन चढ़ता आता था, पर गाँव का कोई आदमी नागिन की लाश उठाने को आता न दिखाई दिया। मुंशीजी घर-घर घूमे, पर कोई न निकला। भला हत्यारे के दरवाजे पर कौन जाए? हत्यारे की लाश कौन उठावे? इस समय मुंशीजी का रोब-दाब, उनकी प्रबल लेखनी का भय और उनकी कानूनी प्रतिभा एक भी काम न आई। चारों ओर से हारकर मुंशीजी फिर घर आए। यहाँ उन्हें अंधकार-ही-अंधकार दीखता था। दरवाजे तक तो आए पर भीतर पैर नहीं रखा जाता था, न बाहर ही खड़े रह सकते थे। बाहर मूँगा थी, भीतर नागिन। जी को कड़ा करके हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए घर में घूसे। उस समय उनके मन पर जो बीतती थी, वही जानते थे, उसका अनुमान करना कठिन है। घर में लाश पड़ी हुई, न कोई आगे, न पीछे। दूसरा ब्याह तो हो सकता था। अभी इसी फागुन में तो पचासवाँ लगा है, पर ऐसी सुयोग्य और मीठी बोल वाली स्त्री कहाँ मिलेगी? अफसोस! अब तगादा करने वालों से बहस कौन करेगा, कौन उन्हें निरुत्तर करेगा? किसकी कड़ी आवाज तीर की तरह तगादेदारों की छाती में चुभेगी? यह नुकसान अब पूरा नहीं हो सकता। दूसरे दिन मुंशीजी लाश को ठेलगाड़ी पर लादकर गंगाजी की तरफ चले।

शव के साथ जाने वालों की संख्या कुछ भी न थी। एक स्वयं मुंशीजी, दूसरे उनके पुत्ररत्न रामगुलामजी। इस बेइज्जती से मूँगा की लाश भी न उठी थी। मूँगा ने नागिन की जान लेकर भी मुंशीजी का पिंड न छोड़ा। उनके मन में हर घड़ी मूँगा की मूर्ति विराजमान रहती

थी। कहीं रहते, उनका ध्यान इसी ओर रहा करता था। यदि दिल-बहलाव का कोई उपाय होता तो शायद वह इतने बेचैन न होते, पर गाँव का एक पुतला भी उनके दरवाजे की ओर न झाँकता। बेचारे अपने हाथों पानी भरते, आप ही बरतन धोते। सोच और क्रोध, चिंता और भय, इतने शत्रुओं के सामने एक दिमाग कब तक ठहर सकता था। विशेषकर वह दिमाग, जो रोज कानून की बहसों में खर्च हो जाता था।

अकेले कैदी की तरह उनके दस-बारह दिन तो ज्यों-त्यों कर कटे। चौदहवें दिन मुंशीजी ने कपड़े बदले और बोरिया-बस्ता लिये हुए कचहरी चले। आज उनका चेहरा कुछ खिला हुआ था। जाते ही मेरे मुक्किल मुझे घेर लेंगे, मेरी मातमपुरसी करेंगे। मैं आँसुओं की दो-चार बूँदें गिरा दूँगा, फिर बँनामों, रेहननामों और सुलहनामों की भरमार हो जाएगी। मुट्ठी गरम होगी, शाम को जरा नशे-पानी का रंग जम जाएगा, जिसके छूट जाने से जी और भी उचट रहा था। इन्हीं विचारों में मग्न मुंशीजी कचहरी पहुँचे।

पर वहाँ रेहननामों की भरमार और बँनामों की बाढ़ और मुक्किलों की चहल-पहल के बदले निराशा की रेतीली भूमि नजर आई। बस्ता खोले घंटों बैठे रहे, पर कोई नजदीक भी न आया। किसी ने इतना भी न पूछा कि आप कैसे हैं? नए मुक्किल तो खैर, बड़े-बड़े पुराने मुक्किल जिनका मुंशीजी से कई पीढ़ियों से सरोकार था, आज उनसे मुँह छिपाने लगे। वह नालायक और अनाड़ी रमजान, जिसकी मुंशीजी हँसी उड़ाते थे और जिसे शुद्ध लिखना भी न आता था, आज गोपियों का कन्हैया बना हुआ था। वाह रे भाग्य! मुक्किल यों मुँह फेरे चले जाते हैं मानो किसी की जान-पहचान ही नहीं। दिन भर कचहरी की खाक छानने के बाद मुंशीजी घर चले, निराशा और चिंता में डूबे हुए। ज्यों-ज्यों घर के निकट आते थे, मुँगा का चित्र सामने आता जाता था। यहाँ तक कि जब घर का द्वार खोला और दो कुत्ते, जिन्हें रामगुलाम ने बंद कर रखा था, झपटकर बाहर निकले तो मुंशीजी के होश उड़ गए, एक चीख मारकर जमीन पर गिर पड़े।

मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर भय का जितना प्रभाव होता है, उतना और किसी शक्ति का नहीं। प्रेम, चिंता, हानि यह सब मन को अवश्य दुखित करते हैं, पर यह हवा के हलके झोंके हैं और भय प्रचंड आँधी है। मुंशीजी पर इसके बाद क्या बीती, मालूम नहीं। कई दिनों तक लोगों ने उन्हें कचहरी जाते और वहाँ से मुरझाए हुए लौटते देखा। कचहरी जाना उनका कर्तव्य था और यद्यपि वहाँ मुक्किलों का अकाल था, तो भी तगादेवालों से गला छुड़ाने और उनको भरोसा दिलाने के लिए अब यही एक लटका रह गया था। इसके बाद कई महीने तक दिखाई न पड़े, बदरीनाथ चले गए। एक दिन गाँव में एक साधु आया। भभूत रमाए, लंबी जटाएँ, हाथ में कमंडल। उसका चेहरा मुंशी रामसेवक से बहुत मिलता-जुलता था। बोलचाल में भी अधिक भेद न था। वह एक पेड़ के नीचे धूनी रमाए बैठा रहा। उसी रात को मुंशी रामसेवक के घर से धुआँ उठा, फिर आग की ज्वाला दीखने लगी और आग भड़क उठी। गाँव के सैकड़ों आदमी दौड़े, आग बुझाने के लिए नहीं, तमाशा देखने के लिए। एक गरीब की हाथ में कितना प्रभाव है! रामगुलाम मुंशीजी के गायब हो जाने पर अपने मामा के यहाँ चला गया और वहाँ कुछ दिनों रहा, पर वहाँ उसकी चाल-ढाल किसी

को पसंद न आई।

एक दिन उसने किसी के खेत में मूली नोची। उसने दो-चार धौल लगाए। उस पर वह इस कदर बिगड़ा कि जब उसके चने खलिहान में आए तो उसने आग लगा दी। सारा का सारा खलिहान जलकर खाक हो गया। हजारों रुपयों का नुकसान हुआ। पुलिस ने तहकीकात की, रामगुलाम पकड़ा गया। इसी अपराध में वह चुनार के रिफारमेटरी स्कूल में मौजूद है।



परीक्षा

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से विनय की, "दीनबंधु! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज संभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाए तो बुढ़ापे में दाग लगे, सारी जिंदगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाए।"

राजा साहब अपने अनुभवशील नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तो हारकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली; पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला, "देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें, वे वर्तमान सरदार सुजानसिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह जरूरत नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृदय पुष्ट होना आवश्यक है, मंदाग्नि के मरीज को यहाँ तक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के सहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जाएगी। विद्या का कम, परंतु कर्तव्य का अधिक विचार किया जाएगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।"

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में तहलका मचा दिया। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं? केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नए-नए और रंग-बिरंग के मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से, कोई नए फैशन का प्रेम, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पंडितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन एमामे, चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कनटोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबंध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोजेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए ऊषा का दर्शन करते थे। मिस्टर 'ब' को हुक्का पीने की लत थी, आजकल बहुत रात गए किवाड़ बंद करके अँधेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर 'द', 'स' और 'ज' से उनके घरों पर नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सले के उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मंदिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर 'ल' को किताब से घृणा थी, परंतु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रंथ देखने-पढ़ने में डूबे रहते थे।

जिससे बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम देता था। शर्माजी घड़ी रात से ही वेद-मंत्र पढ़ने में लगते थे और मौलवी साहब को नमाज और तलावत के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्य का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है।

एक दिन नए फैशन वालों को सूझी कि आपस में हॉकी का खेल हो जाए। यह प्रस्ताव हॉकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है, इसे क्यों छिपाकर रखें? संभव है कि कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाए। चलिए तय हो गया, फील्ड बन गई, खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकरें खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिलकुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भलेमानुस लोग शतरंज और ताश जैसे गंभीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लिये तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहे की दीवार है।

संध्या तक यही धूमधाम रही। लोग पसीने से तर हो गए। खून की गरमी आँख और चेहरे से झलक रही थी। हाँफते-हाँफते बेदम हो गए, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अँधेरा हो गया था। इस मैदान से जरा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता था। खेल अभी बंद ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिये हुए उस नाले में

आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथ से ढकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार-बार झुँझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई सहायक नजर न आता।

गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकता। बड़ी आपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच में खिलाड़ी हाथों में डंडे लिये घूमते-घामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा; परंतु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा, मगर बंद आँखों से, जिनमें सहानुभूति न थी। उनमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता और वात्सल्य का नाम भी न था।

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हॉकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। वह लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। वह ठिठक गया। उसे किसान की सुरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गईं। उसने डंडा एक किनारे रख दिया, कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला, "मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ?"



किसान ने देखा, एक गठे हुए बदन का आदमी सामने खड़ा है। झुककर बोला, "हुजूर, मैं आपसे कैसे कहूँ?" युवक ने कहा, "मालूम है, तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहियों को ढकेलता हूँ, अभी गाड़ी ऊपर चढ़ जाती है।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहिए को जोर लगाकर उकसाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक जमीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैल को सहारा मिला, हिम्मत बँध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार जोर किया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, "महाराज, आपने मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात मुझे यहाँ बैठना पड़ता।"

युवक ने हँसकर कहा, "अब मुझे कुछ इनाम देते हो?" किसान ने गंभीर भाव से कहा, "नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।"

युवक ने किसान की तरफ गौर से देखा। उसके मन में एक संदेह हुआ, क्या यह सुजानसिंह तो नहीं है? आवाज मिलती है, चेहरा-मोहरा भी वही। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के संदेह को भाँप गया। मुसकराकर बोला, "गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।"

निदान, महीना पूरा हुआ। चुनाव का दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल ही से अपनी किस्मतों का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते थे। नहीं मालूम, आज किसके नसीब जागेंगे! न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी।

संध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राज्य के कर्मचारी और दरबारी तथा दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, सब रंग-बिरंगी सज-धज बनाए दरबार में आ बिराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

जब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा, "मेरे दीवान के उम्मीदवार महाशयो! मैंने आप लोगों को जो कष्ट दिया है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी, जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्मबल। हृदय, वह जो उदार हो, आत्मबल वह, जो आपत्ति का वीरता के साथ सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमें ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुण वाले संसार में कम हैं और जो हैं, वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं, उन तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पंडित जानकीनाथ सा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ।"

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ देखा। उम्मीदवार दल की आँखें उधर उठीं, मगर उन आँखों में सत्कार था, इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया, "आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होकर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे, उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतावेगा। उसका संकल्प दृढ़ है, जो चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाए, परंतु दया और धर्म से कभी न हटेगा।"



क्रिकेट मैच

1 जनवरी, 1935

आज क्रिकेट मैच में मुझे जितनी निराशा हुई, मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता। हमारी टीम दुश्मनों से कहीं ज्यादा मजबूत थी, मगर हमें हार हुई और वे लोग जीत का डंका बजाते हुए ट्रॉफी उड़ा ले गए। क्यों? सिर्फ इसलिए कि हमारे यहाँ योग्यता शर्त नहीं। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत जरूरी समझते हैं। हिज हाइनेस कप्तान चुने गए, क्रिकेट बोर्ड का फैसला सबको मानना पड़ा। मगर कितने दिलों में आग लगी, कितने लोगों ने हुक्मे-हाकिम समझकर इस फैसले को मंजूर किया, वह खेलने वालों से पूछिए और जहाँ सिर्फ मुँहदेखी हैं वहाँ उमंग कहाँ, हम खेले और जाहिरा दिल लगाकर खेलें। मगर यह सच्चाई के लिए जान देने वालों की फौज न थी। खेल में किसी का दिल न था।

मैं स्टेशन पर खड़ा अपना तीसरे दरजे का टिकट लेने की फिक्र में था कि एक युवती ने, जो अभी कार से उतरी थी, आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया और बोली, "आप भी इसी गाड़ी से चल रहे हैं, मिस्टर जफर?"

मुझे हैरत हुई, यह कौन लड़की है और इसे मेरा नाम क्योंकर मालूम हो गया। मुझे एक पल के लिए सकता-सा हो गया कि जैसे शिष्टाचार और अच्छे आचरण की सब बातें दिमाग से गायब हो गई हों। साँदर्य में एक ऐसी शान होती है जो बड़े-बड़ों का सिर झुका देती है। मुझे अपनी तुच्छता की ऐसी अनुभूति कभी न हुई थी। मैंने निजाम हैदराबाद से, हिज एक्सीलेन्सी वायसराय से, महाराज मैसूर से हाथ मिलाया, उनके साथ बैठकर खाना खाया, मगर यह कमजोरी मुझ पर कभी न छाई थी। बस यही तो चाहता था कि अपनी पलकों से उसके पाँव चूम लूँ। यह वह सलोनापन न था, जिस पर हम जान देते हैं, न वह नजाकत जिसकी कवि लोग कसम खाते हैं। उस जगह बुद्धि की कांत थी, गंभीरता थी, गरिमा थी, उमंग थी और थी आत्म-अभिव्यक्ति की निस्संकोच लालसा। मैंने सवाल भरे अंदाज में कहा, "जी हाँ।"

यह कैसे पृष्ठ कि मेरी आपसे भेंट कब हुई। उसकी बेतकल्लुफी कह रही थी, वह मुझसे परिचित है। मैं बेगाना कैसे बनूँ। इसी सिलसिले में मैंने अपने मर्द होने का फर्ज अदा कर

दिया, "मेरे लिए कोई खिदमत।"

उसने मुसकराकर कहा, "जी हाँ, आपसे बहुत से काम लूँगी। चलिए, अंदर वेटिंग-रूम में बैठें। लखनऊ जा रहे होंगे? मैं भी वहीं चल रही हूँ।"

वेटिंग-रूम आकर उसने मुझे आरामकुरसी पर बिठाया और खुद एक मामूली कुरसी पर बैठकर सिगरेट केस मेरी तरफ बढ़ाती हुई बोली, "आज तो आपकी बॉलिंग बड़ी भयानक थी, वरना हम लोग पूरी इनिंग से हारते।"

मेरा ताज्जुब और भी बढ़ा। इस सुंदरी को क्या क्रिकेट में भी शॉक है? मुझे उसके सामने आरामकुरसी पर बैठते हुए झिझक हो रही थी, ऐसी बदतमीजी मैंने कभी न की थी। ध्यान उसी तरफ लगा था। तबीयत में कुछ घुटन सी हो रही थी। रंगों में यह तेजी और तबीयत में वह गुलाबी नशा न था जो ऐसे मौके पर स्वभावतः मुझ पर छा जाना चाहिए था। मैंने पूछा, "क्या आप वहीं तशरीफ रखती थी?"

उसने अपना सिगरेट जलाते हुए कहा, "जी हाँ, शुरू से आखिर तक, मुझे तो सिर्फ आपका खेल ज़ेचा। और लोग तो कुछ बेदिल से हो रहे थे और मैं उसका राज समझ रही हूँ। हमारे यहाँ लोगों में सही आदमियों को सही जगह रखने का माद्दा ही नहीं है, जैसे इस राजनीति परस्ती ने हमारे सभी गुणों को कुचल डाला हो। जिसके पास धन है, उसे हर चीज का अधिकार है। वह किसी ज्ञान-विज्ञान के, साहित्यिक-सामाजिक जलसे का सभापति हो सकता है, इसकी योग्यता उसमें हो या न हो। नई इमारतों का उद्घाटन उसके हाथों कराया जाता है, बुनियादे उसके हाथ रखवाई जाती हैं, सांस्कृतिक आंदोलनों का नेतृत्व उसे दिया जाता है, वह कान्फोकेशन के भाषण पढ़ेगा, लड़कों को इनाम बाँटेगा, यह सब हमारी दास-मनोवृत्ति का प्रसाद है। कोई ताज्जुब नहीं कि हम इतने नीचे और गिरे हुए हैं, जहाँ हुक्म और अख्तियार का मामला है वहाँ तो खैर मजबूरी है, हमें लोगों के पैर चूमने ही पड़ते हैं। मगर जहाँ हम अपने स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र आचरण से काम ले सकते हैं, वहाँ भी हमारी जी-हुजूरी की आदत हमारा गला नहीं छोड़ती। इस टीम का कप्तान आपको होना चाहिए था, तब देखती कि दुश्मन क्योंकर बाजी ले जाता। महाराजा साहब में इस टीम का कप्तान बनने की इतनी योग्यता है जितनी आपने असेंबली का सभापति बनने की या मुझमें सिनेमा एक्टिंग की।"

बिलकुल वही भाव जो मेरे दिल में थे, मगर उसी जबान से निकलकर कितने असरदार और कितने आँख खोलने वाले हो गए। मैंने कहा, "आप ठीक कहती हैं। सचमुच यह हमारी कमजोरी है।"

"आपको इस टीम में शरीक न होना चाहिए था।"

"मैं मजबूर था।"

इस सुंदरी का नाम मिस हेलेन मुखर्जी था। अभी इंग्लैंड से आ रही हैं, यही क्रिकेट मैच

देखने के लिए बंबई उतर गई थी। इंग्लैंड में उसने डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और जनता की सेवा उसके जीवन का लक्ष्य है। वहाँ उसने एक अखबार में मेरी तस्वीर देखी थी और मेरा जिक्र भी पढ़ा था। तब से वह मेरे लिए अच्छा ख्याल रखती है। यहाँ मुझे खेलते देखकर और भी प्रभावित हुई। उसका इरादा है कि हिंदुस्तान की एक नई टीम तैयार की जाए और उसमें वही लोग लिये जाएँ जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारी हैं। उसका प्रस्ताव है कि मैं इस टीम का कप्तान बनाया जाऊँ। इसी इरादे से वह सारे हिंदुस्तान का दौरा करना चाहती है। उसके स्वर्गीय पिता डॉ- एनमुख शर्मा ने बहुत संपत्ति छोड़ी है और वह उसकी संपूर्ण उत्तराधिकारिणी है। उसका प्रस्ताव सुनकर मेरा सर आसमान में उड़ने लगा। मेरी जिंदगी का सुनहरा सपना इतने अप्रत्याशित ढंग से वास्तविकता का रूप ले सकेगा, यह कौन सोच सकता था। अलौकिक शक्ति में मेरा विश्वास नहीं, मगर आज मेरे शरीर का रोआँ-रोआँ कृतज्ञता और भक्ति भावना से भरा हुआ था। मैंने उचित और विनम्र शब्दों में मिस हेलेन को धन्यवाद दिया।



2 जनवरी-मैं हॅरान हूँ, हेलेन को मुझसे इतनी हमदर्दी क्यों हैं, और यह सिर्फ दोस्ताना हमदर्दी नहीं है। इसमें मुहब्बत की सच्चाई है। दया में तो इतना आतिथ्य-सत्कार नहीं हुआ करता, और रही मेरे गुणों की स्वीकृति, तो मैं अक्ल से इतना खाली नहीं हूँ कि इस धोखे में पड़ूँ। गुणों की स्वीकृति ज्यादा-से-ज्यादा एक सिगरेट और एक प्याली चाय पा सकती है। यह सेवा-सत्कार तो मैं वहीं पाता हूँ जहाँ किसी मैच में खेलने के लिए मुझे बुलाया जाता है। तो भी वहाँ भी इतने हार्दिक ढंग से मेरा सत्कार नहीं होता, सिर्फ रस्मी खातिरदारी बरती जाती है उसने जस मरी सि वधा आरं मेरे आराम के लिए अपने को समर्पित कर दिया हो। मैं तो शायद अपनी प्रेमिका के सिवा और किसी के साथ इस हार्दिकता का बरताव न कर सकता। याद रहे, मैंने प्रेमिका कहा है, पत्नी नहीं कहा। पत्नी की हम खातिरदारी नहीं करते, उससे तो खातिरदारी करवाना ही हमारा स्वभाव हो गया है और शायद सच्चाई भी यही है। मगर फिलहाल तो मैं इन दोनों नेमतों में से एक का भी हाल नहीं जानता। उसके नाश्ते, डिनर, लंच में तो मैं शरीक था ही, हर स्टेशन पर (वह डाक थी और खास-खास स्टेशनों पर ही रुकती थी) मेवे तथा फल मँगवाती और मुझे आग्रहपूर्वक खिलाती। कहाँ की क्या चीज मशहूर है, इसका उसे खूब पता है। मेरे दोस्तों और घरवालों के लिए तरह-तरह के तोहफे खरीदे, मगर हैरत यह है कि मैंने एक बार भी उसे मना न किया। मना क्यों करता, मुझसे पूछकर तो लाती नहीं। जब वह एक चीज लाकर मुहब्बत के साथ मुझे भेंट करती है तो मैं कैसे इनकार करूँ। खुदा जाने क्यों मैं दर्द होकर भी उसके सामने औरत की तरह शरमीला, कम बोलने वाला हो जाता हूँ कि जैसे मेरे मुँह में जवान ही नहीं। दिन की थकान की वजह से रात भर मुझे बेचैनी रही। सर में हलका सा दर्द था, मगर मैंने इस दर्द को बढ़ाकर कहा। अकेला होता तो शायद इस दर्द की जरा भी परवाह न करता, मगर आज उसकी मौजूदगी में मुझे उसे दर्द को जाहिर करने में मजा आ रहा था। वह मेरे सिर पर तेल की मालिश करने लगी और मैं खामखाह निढाल हुआ जाता था। मेरी बेचैनी के साथ उसकी परेशानी बढ़ती जाती थी। मुझसे बार-बार पूछती, 'अब दर्द कैसा है' और मैं अनमने ढंग से कहता, 'अच्छा हूँ।' उसकी नाजुक हथेलियों के स्पर्श से मेरे प्राणों में गुदगुदी होती थी। उसका वह आकर्षक चेहरा मेरे सर पर झुका है, उसकी गरम साँसें मेरे माथे को चूम रही हैं और मैं गोया जन्नत के मजे ले रहा हूँ, मेरे दिल में अब उस पर फतह पाने की खाहिश झकोले ले रही है। मैं चाहता हूँ वह मेरे नाज उठाए। मेरी तरफ से कोई ऐसी पहल न होनी चाहिए, जिससे वह समझ जाए कि मैं उस पर लट्टू हो गया हूँ। चौबीस घंटे के अंदर मेरी मनस्थिति में कैसे यह क्रांति हो जाती है, मैं क्योंकर प्रेम के प्रार्थी से प्रेम का पात्र बन जाता हूँ। वह बदस्तूर उसी तल्लीनता से मेरे सिर पर हाथ रखे बैठी हुई है। तब मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं भी उस अहसास से बरी नहीं हूँ। मगर इस माशूकी में आज जो लुप्त आया, उस पर आशिकी निछावर है। मुहब्बत करना गुलामी है, मुहब्बत किया जाना बादशाहत।

मैंने दया दिखलाते हुए कहा, "आपको मेरे से बड़ी तकलीफ हुई।" उसने उमगकर कहा, "मुझे क्या तकलीफ हुई। आप दर्द से बेचैन थे और मैं बैठी थी। काश! यह दर्द मुझे हो जाता।"

मैं सातवें आसमान पर उड़ा जा रहा था।

5 जनवरी-कल शाम को हम लखनऊ पहुँच गए। रास्ते में हेलेन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर खूब बातें हुईं। ग्रेजुएट तो भगवान् की दया से मैं भी हूँ और तब से फुरसत के वक्त किताबें भी देखता ही रहा हूँ। विद्वानों की संगत में भी बैठा हूँ, लेकिन उसके ज्ञान के विस्तार के आगे कदम-कदम पर मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। हर एक प्रश्न पर उसकी अपनी राय है और मालूम होता है कि उसने छानबीन के बाद वह राय कायम की है। उसके विपरीत मैं उन लोगों में हूँ, जो हवा के साथ उड़ते हैं, जिन्हें क्षणिक प्रेरणाएँ उलट-पुलटकर रख देती हैं। मैं कोशिश करता था कि किसी तरह उस पर अपनी अक्ल का सिक्का जमा दूँ, मगर उसके दृष्टिकोण मुझे बेजबान कर देते थे। जब मैंने देखा कि ज्ञान-विज्ञान की बातों में तो मैं उससे न जीत सकूँगा तो मैंने एबीसीनिया और इटली की लड़ाई का जिक्र छेड़ दिया, जिस पर मैंने अपनी समझ में बहुत कुछ पढ़ा था और इंग्लैंड तथा "रांस" ने इटली पर जो दबाव डाला है, उसकी तारीफ मैंने अपनी वाक्-शक्ति खर्च कर दी। उसने एक मुसकराहट के साथ कहा, "आपका यह खयाल है कि इंग्लैंड और "रांस" सिर्फ इन्सानियत और कमजोर की मदद करने की भावना से प्रभावित हो रहे हैं तो आपकी गलती है। उनकी साम्राज्य-लिप्सा यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि दुनिया की कोई दूसरी ताकत फले-फूले। मुसोलिनी वही कर रहा है, जो इंग्लैंड ने कितनी ही बार किया है और आज भी कर रहा है। यह सारा बहुरूपियापन सिर्फ एबीसीनिया में व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए है। इंग्लैंड को अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊँचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्यों न हो? इटली जो कुछ कर रहा है, ईमानदारी के साथ एलानिया कर रहा है। उसने कभी दुनिया के सब लोगों से भाईचारे का डंका नहीं पीटा, कभी शांति का राग नहीं अलापा। वह तो साफ कहता है कि संघर्ष ही जीवन का लक्षण है। मनुष्य की उन्नति लड़ाई ही के जरिए होती है। आदमी के अच्छे गुण लड़ाई के मैदान में ही खुलते हैं। सबकी बराबरी के दृष्टिकोण को वह पागलपन कहता है। वह अपना शुमार भी उन्हीं बड़ी कौमों में करता है, जिन्हें रंगीन आबादियों पर हुकूमत करने का हक है। इसलिए हम उसकी कार्यप्रणाली को समझ सकते हैं। इंग्लैंड ने हमेशा धोखेबाजी से काम लिया है। हमेशा एक राष्ट्र के विभिन्न तत्वों में भेद डालकर या उनके आपसी विरोधों को राजनीति का आधार बनाकर उन्हें अपना पिछलग्गू बनाया है। मैं तो चाहती हूँ कि दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें तथा इंग्लैंड का आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतंत्र और शांति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जाएगी, दुनिया में शांति का राज्य न होगा। कमजोर कौमों को जिंदा रहने का कोई हक नहीं, उसी तरह जिस तरह कमजोर पौधे को। सिर्फ इसलिए नहीं कि उनका अस्तित्व स्वयं उनके लिए कष्ट का कारण है बल्कि इसलिए कि वही दुनिया के इस झगड़े और रक्तपात के लिए जिम्मेदार हैं।"

मैं भला क्यों इस बात से सहमत होने लगा। मैंने जवाब तो दिया और इन विचारों का इतने ही जोरदार शब्दों में खंडन भी किया। मगर मैंने देखा कि इस मामले में वह संतुलित बुद्धि

से काम नहीं लेना चाहती या नहीं ले सकती।

स्टेशन पर उतरते ही मुझे यह फिक्र हुई कि हेलेन को अपना मेहमान कैसे बनाऊँ। अगर होटल में ठहराऊँ तो भगवान् जाने अपने दिल में क्या कहे। अगर अपने घर ले जाऊँ तो शर्म मालूम होती है। वहाँ ऐसी रुचि-संपन्न और अमीरों जैसे स्वभाव वाली युवती के लिए सुविधा की क्या सामग्रियाँ हैं। यह संयोग की बात है कि मैं क्रिकेट अच्छा खेलने लगा और पढ़ना-लिखना छोड़-छाड़कर उसी का हो रहा और एक स्कूल का मास्टर हूँ, मगर घर की हाल बदस्तूर है। वही पुराना, अँधेरा, टूटा-फूटा मकान तंग गली में, वही पुराने रंग-ढंग, वही पुराना ढ़चर। अम्मा तो शायद हेलेन को घर में कदम ही न रखने दें। और यहाँ तक नौबत ही क्यों आने लगी, हेलेन खुद दरवाजे से ही भागेगी। काश! आज अपना मकान होता, सजा-सँवरा, मैं इस काबिल होता कि हेलेन की मेहमानदारी कर सकता, इससे ज्यादा खुशनसीबी और क्या हो सकती थी कि बेसरोसामानी का बुरा हो।

मैं यही सोच रहा था कि हेलेन ने कुली से असबाब उठवाया और बाहर आकर एक टैक्सी बुला ली। मेरे लिए इस टैक्सी में बैठ जाने के सिवा दूसरा चारा क्या बाकी रह गया था। मुझे यकीन है, अगर मैं उसे अपने घर ले जाता तो उस बेसरोसामानी के बावजूद वह खुश होती। हेलेन रुचि-संपन्न है, मगर नखरेबाज नहीं। वह हर तरह की आजमाइश और तजुर्बे के लिए तैयार रहती है। हेलेन शायद आजमाइशों को और नागवार तजुर्बों को बुलाती है, मगर मुझमें न वह कल्पना है, न वह साहस।

उसने जरा गौर से मेरा चेहरा देखा होता तो उसे मालूम हो जाता कि उस पर कितनी शर्मिंदगी और कितनी बेचारगी झलक रही थी। मगर शिष्टाचार का निबाह तो जरूरी था, मैंने आपत्ति की, "मैं तो आपको भी अपना मेहमान बनाना चाहता था, मगर आप उलटा मुझे होटल लिये जा रही हैं।"

उसने शरारत से कहा, "इसीलिए कि आप मेरे काबू से बाहर न हो जाएँ। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होती कि आपके आतिथ्य सत्कार का आनंद उठाऊँ, लेकिन प्रेम ईर्ष्यालु होता है, यह आपको मालूम है। वहाँ आपके इष्ट मित्र आपके वक्त का बड़ा हिस्सा लेंगे, आपको मुझसे बातें करने का वक्त ही न मिलेगा और मर्द आमतौर पर कितने बेमुरव्वत तथा जल्द भूल जाने वाले होते हैं, इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ सकती। मुझे अपने सामने देखकर तुम मुझे भूलना भी चाहो तो नहीं भूल सकते।"

मुझे अपनी इस खुशनसीबी पर हैरत ही नहीं, बल्कि ऐसा लगने लगा कि जैसे सपना देख रहा हूँ। जिस सुंदरी की एक नजर पर मैं अपने को कुरबान कर देता, वह इस तरह मुझसे मुहब्बत का इजहार करे। मेरा तो जी चाहता है कि इसी बात पर उनके कदमों को पकड़कर सीने से लगा लूँ और आँसुओं से तर कर दूँ।

होटल में पहुँचे। मेरा कमरा अलग था। खाना हमने साथ खाया और थोड़ी देर तक वहीं

हरी-हरी घास पर टहलते रहे। खिलाड़ियों को कैसे चुना जाए, यही सवाल था। मेरा जी तो यही चाहता था कि सारी रात उसके साथ टहलता रहूँ, लेकिन उसने कहा, "आप अब आराम करें, सुबह बहुत काम है।" मैं अपने कमरे में जाकर लेटा रहा, मगर सारी रात नींद नहीं आई। हेलेन का मन अभी तक मेरी आँखों से छिपा हुआ था, हर क्षण वह मेरे लिए पहेली होती जा रही थी।

12 जनवरी-आज दिन भर लखनऊ के क्रिकेटरों का जमाव रहा। हेलेन दीपक थी और पतंगे उसके गिर्द मंडरा रहे थे। यहाँ से मेरे अलावा दो लोगों का खेल हेलेन को बहुत पसंद आया-बृजेंद्र और सादिक। हेलेन उन्हें ऑल इंडिया टीम में रखना चाहती थी।

इसमें कोई शक नहीं है कि दोनों इस फन में उस्ताद हैं, लेकिन उन्होंने जिस तरह शुरुआत की है, उससे तो यही मालूम होता है कि वह क्रिकेट खेलने नहीं, अपनी किस्मत की बाजी खेलने आए हैं। हेलेन किस मिजाज की औरत है, यह समझना मुश्किल है। बृजेंद्र मुझसे ज्यादा सुंदर हैं, यह मैं भी स्वीकार करता हूँ, रहन-सहन में पूरा साहब हैं। लेकिन पक्का शोहदा, लोफर हैं। मैं नहीं चाहता कि हेलेन उससे किसी तरह का संबंध रखे। अदब तो उसे छू नहीं गया। बदजबान पहले सिरे का, बेहूदा गंदे मजाक, बातचीत का ढंग नहीं और मौके-महल की समझ नहीं। कभी-कभी हेलेन से ऐसे मतलब भरे इशारे कर जाता है कि मैं शर्म से सिर झुका लेता हूँ लेकिन हेलेन को शायद उसका बाजारपन, उसका छिछोरापन महसूस नहीं होता। नहीं, वह शायद उसके गंदे इशारों का मजा लेती है। मैंने कभी उसके माथे पर शिकन नहीं देखी। यह मैं नहीं कहता कि यह हँसमुखपन कोई बुरी चीज है, न जिंदादिली का मैं दुश्मन हूँ, लेकिन एक लेडी के साथ तो अदब और कायदे का लिहाज रखना ही चाहिए।

सादिक एक प्रतिष्ठित कुल का दीपक हैं, बहुत ही शुद्ध-आचरण, यहाँ तक कि उसे ठंडे स्वभाव का भी कह सकते हैं। वह बहुत घमंडी, देखने में चिड़चिड़ा है, लेकिन अब वह भी शहीदों में दाखिल हो गया है। कल आप हेलेन को अपने शेर सुनाते रहे और वह खुश होती रही। मुझे तो उन शेरों में कुछ मजा न आया। इससे पहले मैंने इन हजरत को कभी शायरी करते नहीं देखा, यह मस्ती कहाँ से फट पड़ी है? रूप में जादुई ताकत है, और क्या कहूँ? इतना भी न सूझा कि उसे शेर ही सुनाना है तो हसरत या जिगर या जोश के कलाम से दो-चार शेर याद कर लेता। हेलेन सबका कलाम पढ़ थोड़े ही बैठी है। आपको शेर कहने की क्या जरूरत, मगर यही बात उनसे कह दूँ तो बिगड़ जाएँगे, समझेंगे मुझे जलन हो रही है। मुझे क्यों जलन होने लगी। हेलेन की पूजा करने वालों में एक मैं ही हूँ? हाँ, इतना जरूर चाहता हूँ कि वह अच्छे-बुरे की पहचान कर सके, हर आदमी से बेतकल्लुफी मुझे पसंद नहीं, मगर हेलेन की नजरों में सब बराबर हैं। वह बारी-बारी से सबसे अलग हो जाती है और सबसे प्रेम करती है। किसी की ओर ज्यादा झुकी हुई है, यह फैसला करना मुश्किल है। सादिक की धन-संपत्ति से वह जरा भी प्रभावित नहीं जान पड़ती। कल शाम को हम लोग सिनेमा देखने गए थे। सादिक ने आज असाधारण उदारता दिखाई। जेब से रुपया निकालकर सबके लिए टिकट लेने चले। मियाँ सादिक, जो इस अमीरी के बावजूद

तंगदिल आदमी हैं, मैं तो कंजूस कहूँगा, हेलेन ने उसकी उदारता को जगा दिया है। मगर हेलेन ने उन्हें रोक लिया और खुद अंदर जाकर सबके लिए टिकट लाई। और यों भी वह इतनी बेदर्दी से रुपया खर्च करती है कि मियाँ सादिक के छक्के छूट जाते हैं। जब उनका हाथ जेब में जाता है, हेलेन के रुपए काउंटर पर जा पहुँचते हैं। कुछ भी हो, मैं तो हेलेन के स्वभाव-ज्ञान पर जान देता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि वह हमारी फरमाइशों का इंतजार करती रहती हैं और उनको पूरा करने में उसे खास मजा आता है। सादिक साहब को उसने अलबम भेंट कर दिया, जो यूरोप के दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों का संग्रह है और जो उसने यूरोप की तमाम चित्रशालाओं में जाकर खुद इकट्ठा किया है। उसकी आँखें कितनी सौंदर्य-प्रेमी हैं। बृजेंद्र जब शाम को अपना नया सूट पहनकर आया, जो उसने अभी सिलाया है, तो हेलेन ने मुसकराकर कहा, "देखो कहीं नजर न लग जाए तुम्हें! आज तो दूसरे यूसुफ बने हुए हो।" बृजेंद्र बाग-बाग हो गया। मैंने जब लय के साथ अपनी ताजा गजल सुनाई तो वह एक-एक शेर पर उछल पड़ी। अब्दुल काव्य-मर्मज्ञ है। मुझे अपनी कविता-रचना पर इतनी खुशी नहीं हुई थी, मगर तारीफ जब सबका बुलौवा हो जाए तो उसकी क्या कीमत। मियाँ सादिक को कभी अपनी सुंदरता का दावा नहीं किया। भीतरी सौंदर्य से आप जितने मालामाल हैं, बाहरी सौंदर्य में उतने ही कंगाल। मगर आज शराब के दौर में कहा, "भई, तुम्हारी ये आँखें तो ज़िगर के पार हुई जाती हैं।" और सादिक साहब उस वक्त उसके पैरों पर गिरते रुक गए। लज्जा बाधक हुई। उनकी आँखों की ऐसी तारीफ शायद ही किसी ने की हो। मुझे कभी अपने रूप-रंग, चाल-ढाल की तारीफ सुनने की इच्छा नहीं हुई। मैं जो कुछ हूँ, जानता हूँ। मुझे अपने बारे में यह धोखा कभी नहीं हो सका कि मैं खूबसूरत हूँ। यह भी जानता हूँ कि हेलेन का यह सब सत्कार कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन अब मुझे भी यह बेचैनी होने लगी कि देखो मुझ पर क्या इनायत होती है। कोई बात न थी, मगर मैं बेचैन रहा। जब मैं शाम को यूनिवर्सिटी ग्राउंड से खेल की प्रैक्टिस करके आ रहा था तो मेरे ये बिखरे हुए बाल कुछ और ज्यादा बिखर गए थे। उसने आसक्त नेत्रों से देखकर फॉरन कहा, "तुम्हारी इन बिखरी हुई जुल्फों पर निसार होने को जी चाहता है।" मैं निहाल हो गया, दिल में क्या-क्या तूफान उठे, कह नहीं सकता।

मगर खुदा जाने क्यों, हम तीनों में से एक भी उसकी किसी अदा या अंदाज या रूप की प्रशंसा शब्दों से नहीं कर पाता। हमें लगता है कि हमें ठीक शब्द नहीं मिलते। जो कुछ हम कह सकते हैं, उससे कहीं ज्यादा प्रभावित हैं। कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

1 फरवरी-हम दिल्ली आ गए। इस बीच में मुरादाबाद, नैनीताल, देहरादून वगैरह जगहों के दौरे किए, मगर कहीं कोई खिलाड़ी न मिला। अलीगढ़ और दिल्ली से कई अच्छे खिलाड़ियों के मिलने की उम्मीद है, इसलिए हम लोग वहाँ कई दिन रहेंगे। मार्च में ऑस्ट्रेलियन टीम यहाँ से खाना होगी। तब तक वह हिंदुस्तान में सारे पहले से निश्चित मैच खेल चुकी होगी। हम उससे आखिरी मैच खेलेंगे और खुदा ने चाहा तो हिंदुस्तान की सारी शिकस्तों का बदला चुका देंगे। सादिक और बृजेंद्र भी हमारे साथ घूमते रहे। मैं तो न चाहता था कि ये लोग आएँ, मगर हेलेन को शायद प्रेमियों के जमघट में मजा आता है। हम सब-के-सब एक ही होटल में हैं और सब हेलेन के मेहमान हैं। स्टेशन पर पहुँचे तो

सैंकड़ों आदमी हमारा स्वागत करने के लिए मौजूद थे। कई औरतें भी थीं, लेकिन हेलेन को न मालूम क्यों औरतों से आपत्ति है। वह उनकी संगत से भागती है, खासकर सुंदर औरतों की छाया से भी दूर रहती है। हालाँकि उसे किसी सुंदरी से जलने का कोई कारण नहीं है। यह मानते हुए भी कि हुस्न उस पर खत्म नहीं हो गया है, उसमें आकर्षण के ऐसे तत्त्व मौजूद हैं कि कोई परी भी उसके मुकाबले खड़ी नहीं हो सकती। नख-शिख ही तो सबकुछ नहीं है, रुचि का सौंदर्य, बातचीत का सौंदर्य, अदाओं का सौंदर्य भी तो कोई चीज है। प्रेम उसके दिल में है या नहीं, खुदा जाने, लेकिन प्रेम के प्रदर्शन में वह

बेजोड़ है। दिलजोई और नाजबरदारी के फन में हम जैसे दिलदारों को भी उससे शर्मिंदा होना पड़ता है। शाम को हम लोग नई दिल्ली की सैर को गए। दिलकश जगह है, खुली हुई सड़कें, जमीन के खूबसूरत टुकड़े, सुहानी रबिशें, उसको बनाने में सरकार ने बेदरंग रुपया खर्च किया है और बेजरूरत। यह रकम रिआया की भलाई पर खर्च की जा सकती थी, मगर इसको क्या कीजिए कि जनसाधारण इसके निर्माण से जितने प्रभावित हैं, उतने अपनी भलाई की किसी योजना से न होते। आप दस-पाँच मंदरसे ज्यादा खोल देते या सड़कों की मरम्मत में या खेती की जाँच-पड़ताल में इस रुपए को खर्च कर देते, मगर जनता को शान-शौकत, धन-वैभव से आज भी जितना प्रेम है, उतना आपके रचनात्मक कामों से नहीं है। बादशाह की जो कल्पना उसके रोम-रोम में घुल गई है, वह अभी सदियों तक न मिटेगी। बादशाह के लिए शान-शौकत जरूरी है। पानी की तरह रुपया बहाना जरूरी है। किफायतशार या कंजूस बादशाह, चाहे वह एक-एक पैसा प्रजा की भलाई के लिए खर्च करे, इतना लोकप्रिय नहीं हो सकता। अंग्रेज मनोविज्ञान के पंडित हैं। अंग्रेज ही क्यों, हर एक बादशाह जिसने अपने बाहुबल और अपनी बुद्धि से यह स्थान प्राप्त किया है, स्वभावतः मनोविज्ञान का पंडित होता है। इसके बगैर जनता पर उसे अधिकार क्योंकि प्राप्त होता। खैर, यह तो मैंने यूँ ही कहा, मुझे ऐसा अंदेशा हो रहा है कि शायद हमारी टीम सपना ही रह जाए। अभी से हम लोगों में अनबन रहने लगी है। बृजेन्द्र कदम-कदम पर मेरा विरोध करता है। मैं आम कहूँ तो वह अदबदाकर इमली कहेगा और हेलेन को उससे प्रेम है। जिंदगी के कैसे-कैसे मीठे सपने देखने लगा था, मगर बृजेन्द्र, कृतघ्न स्वार्थी बृजेन्द्र मेरी जिंदगी तबाह किए डालता है। हम दोनों के प्रिय पात्र नहीं रह सकते, यह तय बात है एक को मैदान से हटना पड़ेगा।

7 फरवरी-शुक्र है दिल्ली में हमारा प्रयत्न सफल हुआ। हमारी टीम में तीन नए खिलाड़ी जुड़े जाफर, मेहरा और अर्जुन सिंह। आज उनके कमाल देखकर ऑस्ट्रेलियन क्रिकेटर की धाक मेरे दिल से जाती रही। तीनों गेंद फेंकते हैं। जाफर अचूक गेंद फेंकता है, मेहरा सब्र की आजमाइश करता है और अर्जुन बहुत चालाक है। तीनों दृढ़ स्वभाव के लोग हैं, निगाह के सच्चे और अकथ। अगर कोई इनसाफ से पूछे तो मैं कहूँगा कि अर्जुन मुझसे बेहतर खेलता है। वह दो बार इंग्लैंड हो आया है, अंग्रेजी रहन-सहन से परिचित है और मिजाज पहचानने वाला भी अव्वल दर्जे का है, सभ्यता

और आचार का पुतला। बृजेन्द्र का रंग फीका पड़ गया। अब अर्जुन पर खास कृपा-दृष्टि है

और अर्जुन पर फतेह पाना मेरे लिए आसान नहीं है, मुझे तो डर है कि वह कहीं मेरी राह का रोड़ा न बन जाए।

25 फरवरी-हमारी टीम पूरी हो गई। दो प्लेयर हमें अलीगढ़ से मिले, तीन लाहौर से और एक अजमेर से और कल हम बंबई आ गए। हमने अजमेर, लाहौर और दिल्ली में वहाँ की टीमों से मैच खेले तथा उन पर बड़ी शानदार विजय पाई। आज बंबई की हिंदू टीम से हमारा मुकाबला है और मुझे यकीन है कि मैदान हमारे साथ रहेगा। अर्जुन हमारी टीम का सबसे अच्छा खिलाड़ी है और हेलेन उसकी इतनी खातिरदारी करती है कि मुझे जलन नहीं होती, इतनी खातिरदारी तो मेहमान की ही की जा सकती है, मेहमान से क्या डर! मजे की बात यह है कि हर व्यक्ति अपने को हेलेन का कृपा-पात्र समझता है और उससे अपने नाज उठाता है। अगर किसी के सिर में दर्द है तो हेलेन का फर्ज है कि उसकी मिजाजपुरसी करे, उसके सिर में चंदन तक घिसकर लगा दे। मगर उसके साथ ही उसका रोब हर एक के दिल में इतना छाया हुआ है कि उसके किसी काम की आलोचना करने का साहस नहीं कर सकता। सब-के-सब उसकी मरजी के गुलाम हैं। वह अगर सबके नाज उठाती है तो हुकूमत भी हर एक पर करती है। शामियाने में एक-से-एक सुंदर औरतों का जमघट है, मगर हेलेन के केंद्रियों की मजाल नहीं कि किसी की तरफ देखकर मुसकरा भी सकें। हर एक के दिल में ऐसा डर छाया रहता है कि जैसे वह हर जगह पर मौजूद है। अर्जुन ने एक मिस पर यूँ ही कुछ नजर डाली थी, हेलेन ने ऐसी प्रलय की आँख से उसे देखा कि सरदार साहब का रंग उड़ गया। हर एक समझता है कि वह उसकी तकदीर की मालिक है और उसे अपनी तरफ से नाराज करके वह शायद जिंदा न रह सकेगा। औरों की तो मैं क्या कहूँ, मैंने ही गोया अपने को उसके हाथों बेच दिया है। मुझे तो अब ऐसा लग रहा है कि मुझमें कोई ऐसी चीज खत्म हो गई, जो पहले मेरे दिल में डाह की आग सी जला दिया करती थी।

हेलेन अब किसी से बोले, किसी से प्रेम की बातें करे, मुझे गुस्सा नहीं आता। दिल पर चोट लगती जरूर है, मगर उसका इजहार अकेले में आँसू बहाकर करने को जी चाहता है। वह स्वाभिमान कहाँ गायब हो गया, नहीं कह सकता। अभी उसकी नाराजगी से दिल के टुकड़े हो गए थे कि एकाएक उसकी एक उचटती हुई सी निगाह ने या एक मुसकराहट ने गुदगुदी पैदा कर दी। मालूम नहीं कि उसमें वह कौन सी ताकत है, जो इतने हौसलामंद नौजवान दिलों पर हुकूमत कर रही है। उसे बहादुरी कहूँ, चालाकी और फुरती कहूँ, हम सब जैसे उसके हाथों की कठपुतलियाँ हैं। हममें अपनी कोई शख्सियत, कोई हस्ती नहीं है, उसने अपने सौंदर्य से, अपनी बुद्धि से, अपने धन से और सबसे ज्यादा सबको समेट सकने की अपनी ताकत से हमारे दिलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

1 मार्च-कल ऑस्ट्रेलियन टीम से हमारा मैच खत्म हो गया। पचास हजार से कम तमाशाइयों की भीड़ न थी। हमने पूरी ईनिंग्स से उनको हराया और देवताओं की तरह पुजे। हममें से हर एक ने दिलोजान से काम किया और सभी यकसां तौर पर फूले हुए थे। मैच खत्म होते ही शहरवालों की तरफ से हमें एक शानदार पार्टी दी गई। ऐसी पार्टी तो शायद वायसराय की तरफ से भी न दी जाती होगी। मैं तो तारीफों और बधाइयों के बोझ से

दब गया। मैंने 44 रनों में पाँच खिलाड़ियों का सफाया कर दिया था। मुझे खुद अपने भयानक गेंद फेंकने पर अचरज हो रहा था। जरूर कोई अलौकिक शक्ति हमारा साथ दे रही थी। इस भीड़ में बंबई का सौंदर्य अपनी पूरी शान और रंगीनी के साथ चमक रहा था और मेरा दावा है कि सुंदरता की दृष्टि से यह शहर जितना भाग्यशाली है, दुनिया का दूसरा शहर शायद ही हो। मगर हेलेन इस भीड़ में भी सबकी दृष्टियों का केंद्र बनी हुई थी। यह जालिम महज हसीन ही नहीं, मीठा बोलती भी है और उसकी अदाएँ भी मीठी हैं।

सारे नौजवान परवानों की तरह उस पर मँडरा रहे थे, एक से एक खूबसूरत, मनचले, और हेलेन उनकी भावनाओं से खेल रही थी, उसी तरह जैसे वह हम लोगों की भावनाओं से खेला करती थी। महाराज कुमार जैसा सुंदर जवान मैंने आज तक नहीं देखा। सूरत से रोब टपकता है। उनके प्रेम ने कितनी सुंदरियों को दुख दिया है, कौन जाने। मरदाना दिलकशी का जादू सा बिखरता चलता है। हेलेन उनसे भी वैसी ही आजाद बेतकल्लुफी से मिली जैसे दूसरे हजारों नौजवानों से। उनके सौंदर्य का, उनकी दौलत का उस पर जरा भी असर न था। न जाने इतना गर्व, इतना स्वाभिमान उसमें कहाँ से आ गया है। कभी नहीं डगमगाती, कहीं रोब में नहीं आती, कभी किसी की तरफ नहीं झुकती। वही हँसी-मजाक, वहीं प्रेम का प्रदर्शन, किसी के साथ कोई विशेषता नहीं, दिलजोई सबकी की, मगर उसी बेपरवाही की शान के साथ।

हम लोग सैर करके कोई दस बजे रात को होटल पहुँचे तो सभी जिंदगी के नए सपने देख रहे थे। सभी के दिलों में एक धुकधुकी-सी हो रही थी कि देखें अब क्या होता है। आशा और भय ने सभी के दिलों में एक तूफान सा उठा रखा था, गोया आज हर एक के जीवन की एक स्मरणीय घटना होने वाली है। अब क्या प्रोग्राम है, इसकी किसी को खबर न थी। सभी जिंदगी के सपने देख रहे थे। हर एक के दिल पर एक पागलपन सवार था, हर एक को यकीन था कि हेलेन की खास दृष्टि उस पर है, मगर यह अंदेशा भी हर एक के दिल में था कि खुदा न खास्ता कहीं हेलेन ने बेवफाई की तो यह जान उसके कदमों पर रख देगा, यहाँ से जिंदा घर जाना कयामत था।

उसी वक्त हेलेन ने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा। जाकर देखता हूँ तो सभी खिलाड़ी जमा हैं। हेलेन उस वक्त अपनी शरबती बेलदार साड़ी में आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। मुझे उस पर झुँझलाहट हुई, इस आम मजमे में मुझे बुलाकर कवायद करने की क्या जरूरत थी। मैं तो खास बरताव का अधिकारी था। मैं भूल रहा था कि शायद इसी तरह उनमें से हर एक अपने को खास बरताव का अधिकारी समझता था।

हेलेन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "दोस्तो, मैं कह नहीं सकती कि आप लोगों की कितनी कृतज्ञ हूँ और आपने मेरी जिंदगी की कितनी बड़ी आरजू पूरी कर दी। आपमें से किसी को मिस्टर रतनलाल की याद आती है?"

रतनलाल! उसे भी कोई भूल सकता है। वह जिसने पहली बार हिंदुस्तान की क्रिकेट टीम को इंग्लैंड की धरती पर अपने जौहर दिखाने का मौका दिया, जिसने अपने लाखों रुपए

इस चीज पर नजर किए और आखिर बार-बार पराजयों से निराश होकर वहीं इंग्लैंड में आत्महत्या कर ली। उसकी वह सूरत अब भी हमारी आँखों के सामने फिर रही है।

सब ने कहा, "खूब अच्छी तरह, अभी बात ही केँ दिन की है।"

"आज इस शानदार कामयाबी पर मैं आपको बधाई देती हूँ। भगवान ने चाहा तो अगले साल हम इंग्लैंड का दौरा करेंगे। आप अभी से इस मोरचे के लिए तैयारियाँ कीजिए। लुत्फ तो जब है कि हम एक मैच भी न हारें, मैदान बराबर हमारे साथ रहे। दोस्तो, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए जो काम किया जाता है, उसी का नाम जिंदगी है। हमें कामयाबी वहीं होती है, जहाँ हम अपने पूरे हौसले से काम में लगे हों, वही लक्ष्य हमारा स्वप्न हो, हमारा प्रेम हो, हमारे जीवन का केंद्र हो। हममें और इस लक्ष्य के बीच में और कोई इच्छा, कोई आरजू दीवार की तरह न खड़ी हो। माफ कीजिएगा, आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नहीं सीखा। आपके लिए क्रिकेट सिर्फ एक मनोरंजन है, आपको उससे प्रेम नहीं। इसी तरह हमारे सैकड़ों दोस्त हैं, जिनका दिल कहीं और होता है, दिमाग कहीं और, और वह सारी जिंदगी नाकाम रहते हैं। आपके लिए मैं ज्यादा दिलचस्पी की चीज थी, क्रिकेट तो सिर्फ मुझे खुश करने का जरिया था। फिर भी आप कामयाब हुए। मुल्क में आप जैसे हजारों नौजवान हैं, जो अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जाएँ तो चमत्कार कर दिखाएँ। जाइए और वह कमाल हासिल कीजिए। मेरा रूप और मेरी रातें वासना का खिलाँना बनने के लिए नहीं हैं। नौजवानों की आँखों को खुश करने और उनके दिलों में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूँ। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊँचा है। सच्ची जिंदगी वहीं है, जहाँ हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।"

हम सब सिर झुकाए सुनते रहे और झल्लाते रहे। हेलेन कमरे से निकलकर कार में जा बैठी। उसने अपनी खानगी का इंतजाम पहले ही कर लिया था। इसके पहले कि हमारे होशोहवास सही हों और हम परिस्थिति समझें, वह जा चुकी थी।

हम सब हफ्ते भर तक बंबई की गलियों, होटलों, बँगलों की खाक छानते रहे, हेलेन कहीं न थी और ज्यादा अफसोस यह है कि उसने हमारी जिंदगी का जो आइडियल रखा, वह हमारी पहुँच से ऊँचा है। हेलेन के साथ जिंदगी का सारा जोश और उमंग खत्म हो गई।



पंच-परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गए थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गए थे और अलगू जब कभी बाहर जाते तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की थी, खूब रकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोए। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की विद्या की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती, जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेगा कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य ही में न थी तो कैसे आती? मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बँनामे पर कचहरी का मुहरिर् भी कलम न उठा सकता था। हलके का डाकिया, कांस्टेबल और तहसील का चपरासी-सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (माँसी) थी। उसके पास बहुत थोड़ी सी मिलकियत थी; परंतु उसके निकट संबंधियों में कोई न थी। जुम्मन ने लंबे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए गए। हलवे-पुलाव

की वर्षा की गई पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मोहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निष्ठुर हो गए। अब बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं।

बुढ़िया न जाने कब तक जिएगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है। बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरती। जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा; पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी-गृहस्वामी के प्रबंध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अंत में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा, "बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपए दे दिया करो, मैं अपना पका खा लूँगी।"

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया, "रुपए क्या यहाँ फलते हैं?"

खाला ने नम्रता से कहा, "मुझे कुछ सूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं?"

जुम्मन ने गंभीर स्वर में जवाब दिया, "तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम माँत से लड़कर आई हो?"

खाला बिगड़ गई, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देखकर मन-ही-मन हँसता है। वह बोले, "हाँ, जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाए, मुझे भी यह रात-दिन की खट-खट पसंद नहीं।"

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न था। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, जो उसके अनुग्रहों का ऋणी न हो ऐसा कौन था जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किसमें इतना बल था, जो उसका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे नहीं।

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आस-पास के गाँवों में घूमती रही। कमर झुककर कमान हो गई थी। एक-एक पग चलना दूभर था, मगर बात आ पड़ी थी, उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाए हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, और किसी ने इसे अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं। कहा, "कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटि खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बाड़ी से क्या काम है?" कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन

का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के से बाल, इतनी सामग्री एकत्र हो, तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों तरफ घूम-घामकर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, "बेटा, तुम भी दम भर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।"

अलगू, "मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।"

खाला, "अपनी विपदा तो सबके आगे रो आई। अब जाने न जाने का इस्तिहार उनको है।"

अलगू, "अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।"

खाला, "बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?"

हमारे सोए हुए धर्म-ज्ञान की सारी संपत्ति लुट जाए, तो उसे खबर नहीं होती, परंतु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है, फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे, "क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न करोगे?"

संध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के-तंबाकू आदि का प्रबंध भी किया था। हाँ, वह स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूरी पर बैठे हुए थे। जब पंचायत में कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल जमीन भर गई पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असंभव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुंड-के-झुंड जमा हो गए थे।

पंच लोग बैठ गए, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की, "पंचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ता-हयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा, पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ, कचहरी-दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दुख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐब देखो तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओ,

क्यों एक बेकस की आह लेता हूँ। मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।"

रामधन मिश्र, जिनके कई आसामियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले, "जुम्मन मियाँ, किसे पंच बढ़ते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो, फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।"

जुम्मन को इस समय पंचायत के सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी-न-किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले, "पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें, उसे बढ़ें। मुझे कोई उग्र नहीं।"

खाला ने चिल्लाकर कहा, "अरे अल्लाह के बंदे! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।"

जुम्मन ने क्रोध में कहा, "अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो, पंच बढ़ो।"

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई, बोली, "बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। कैसी बात करते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो तो जाने दो अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपंच बढ़ती हूँ।"

जुम्मन शेख आनंद से फूल उठे, परंतु भावों को छिपाकर बोले, "अलगू ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।"

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नौ काटने लगे।

बोले, "खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।"

खाला ने गंभीर स्वर में कहा, "बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।"

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, "शेख जुम्मन! हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं, मगर इस समय तुम व बूढ़ी खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से कुछ अर्ज करना हो, करो।"

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांतचित्त होकर बोले, "पंचों, तीन साल हुए खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिल्ला कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह

हैं, आज तक खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है मगर औरतों में जरा अनबन रहती है, उसमें मेरा क्या बस है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती हैं। जायदाद जितनी है, वह पंचों से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता है कि माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नहीं। नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले में न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइंदा पंचों को इख्तियार है, जो फैसला चाहें, करें।"

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी में काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया। अभी यह अलगू मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था। इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गई कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती भी काम न आवेगी?

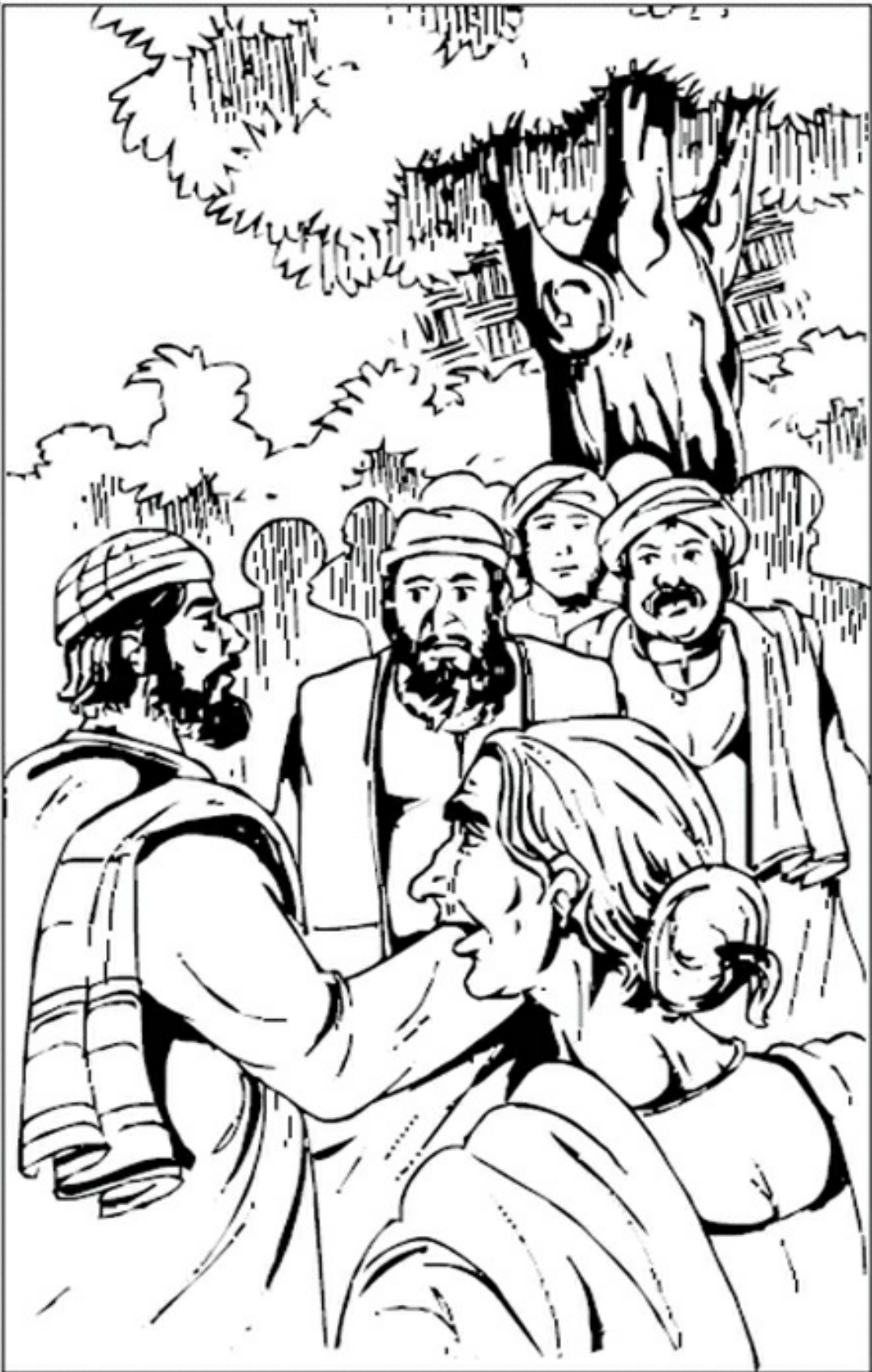
जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया, "जुम्मन शेख! पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है, अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाए।"

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गए। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गर्ले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा की जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता? यह हैजा-प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मों के ही दंड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे, "इसका नाम पंचायत है। दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दिया। दोस्ती दोस्ती की जगह है, किंतु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।"

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते थे। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका, सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक-दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह, जैसे तलवार से ढाल मिलती है। यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।



अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाए थे। बैल पछाही जाति के सुंदर, बड़े-बड़े सींगवाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँव के लोग दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने के बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा, "यह दगाबाजी की सजा है। इनसान सब भले ही कर जाए, पर खुदा नेक-बद सब देखता है।" अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा, "जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शांति स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डाँट-डपटकर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गए। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्कपूर्ण सोटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूँढा गया, पर न मिला। निदान, यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहू थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव से गुड़-घी लादकर मंडी ले जाते, मंडी से तेल-नमक भर लाते और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह हाथ लगे तो दिन भर में बेखटके तीन खेप हों। आजकल तो एक ही खेप में लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भारी की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवाह न की।

समझू साहू ने नया बैल पाया तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गए, वहाँ कुछ सुखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था तो चैन की वंशी बजती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बेलराम का रातिब था, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सबरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। वहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर की खपत! महीने भर ही में वह पिस सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग दूभर था, हड्डियाँ निकल आई थीं पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त थी।

एक दिन चौधरी खेप में साहूजी ने दूना बोझ लादा। दिन भर थका जानवर, पैर न उठते थे, पर साहूजी कोड़े फटकारने लगे। बस फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ, पर साहूजी को जल्द पहुँचने की फिक्र थी, अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी

बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहूजी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़कर खींचा, नथुनों में लकड़ी ठूँस दी, पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहूजी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाए; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बंद हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुर्र लगाए और कोसने लगे, "अभागो! तुझे मरना ही था तो घर पहुँचकर मरता, ससुरा बीच रास्ते ही में मर गया! अब गाड़ी कौन खींचे?" इस तरह साहूजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और पीपे घी उन्होंने बेचे थे दो-ढाई सौ रुपए कमर में बँधे थे। इसके अलावा गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे अतएव छोड़कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गए। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पीया फिर हुक्का पिया। इस तरह साहूजी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे, पर पों फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा तो थैली गायब! घबराकर इधर-उधर देखा, तो कई कनस्तर तेल भी नदारद। अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। साहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले तो रोई, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी, "निर्गोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म भर की कमाई लुट गई।"

इस घटना को हुए कई महीने बीत गए। अलग जब अपने बैल के दाम माँगते, तब साहू और साहुआइन, दोनों ही झल्लाए हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते और अंडबंड बकने लगते, "वाह! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुरदा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं। आँखों में धूल झाँक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया है। हम भी बनिए के बच्चे हैं, ऐसे बुद्ध कहीं और होंगे, पहले जाकर किसी गड्डे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो, और क्या लोगे?"

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहूजी के बर्तने की पुष्टि करते। परंतु डेढ़ सौ रुपए से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़े। साहूजी बिगड़कर लाठी दूँदने घर चले गए। अब साहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुँची। साहुआइन ने घर में घुसकर किवाड़ बंद कर लिये। शोरगुल सुनकर गाँव के भलेमानस जमा हो गए। उन्होंने दोनों को समझाया। साहूजी को दिलासा देकर घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा, पंचायत कर लो, जो कुछ तय हो जाए, उसे स्वीकार कर लो। साहूजी राजी हो गए। अलगू ने भी हामी भर ली।

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू कर दिए। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी। वही संध्या का समय था। खेतों में

कोए पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं? और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाए, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें बेमुरावत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगा करने में भी संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा, "अब देरी क्या है? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी, किस-किस को पंच बढ़ते हो?" अलगू ने दीन भाव से कहा, "समझू साहू ही चुन लें।" समझू खड़े हुए और कड़ककर बोले, "मेरी ओर से जुम्मन शेख।" जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे, वह बात को ताड़ गए। पूछा, "क्यों चौधरी, तुम्हें कोई उज्र तो नहीं?"

चौधरी ने निराश होकर कहा, "नहीं, मुझे क्या उज्र होगा?"

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राहें भूलकर भटकने लगते हैं, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रिमंडल पर आक्रमण करता है। परंतु ऐसे अवसर आते हैं, जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, न्यायपरायण हो जाती है। इसको उत्तरदायित्व का ज्ञान कहा जाता है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्वंड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते हैं, वे उसे कुल-कलक समझते हैं, परंतु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही अव्यस्थित-चित्त उन्मत्त युवक, कितनी धैर्यशील, कैसा शांतचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जो भर भी टलना उचित नहीं।

पंचों ने दोनों से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परंतु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अंत में जुम्मन ने फैसला सुनाया, "अलगू चौधरी और साहू, पंचों ने तुम्हारे मामले पर

अच्छी तरह विचार किया। समझू के लिए उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिए जाते तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबंध न किया गया।"

रामधन मिश्र बोले, "समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है, अतएव उससे दंड लेना चाहिए।" जुम्मन बोले, "यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं।"

झगड़ साहू ने कहा, "समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिए।" जुम्मन बोले, "यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। वह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी।"

अलगू चौधरी फूले न समाए। उठ खड़े हुए और जोर से बोले, "पंच-परमेश्वर की जय!"

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई, "पंच-परमेश्वर की जय!"

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था, "इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्य का काम नहीं। पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है?"

थोड़ी देर के बाद जुम्मन अलगू चौधरी के पास आए और उनके गले लिपटकर बोले, "भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की, तब से मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जुबान से खुदा बोलता है।" अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।



धोखा

स तीकुंड में खिले हुए कमल वसंत के धीमे-धीमे झोंकों से लहरा रहे थे और प्रातःकाल की मंद-मंद सुनहरी किरणें उनसे मिल-मिलकर मुसकराती थीं। राजकुमारी प्रभा कुंड के किनारे हरी-भरी घास पर खड़ी सुंदर पक्षियों का कलरव सुन रही थी। उसका कनकवर्ण तन इन्हीं फूलों की भाँति दमक रहा था, मानो प्रभात की साक्षात् सौम्य मूर्ति है, जो भगवान् अंशुमाली के किरण-करों द्वारा निर्मित हुई थी।

प्रभा ने मौलसिरी के वृक्ष पर बैठी हुई एक श्यामा की ओर देखकर कहा, "मेरा जी चाहता है कि मैं भी एक चिड़िया होती।"

उसकी सहेली उमा ने मुसकराकर पूछा, "क्यों?"

प्रभा ने कुंड की ओर ताकते हुए उत्तर दिया, "वृक्ष की हरी-भरी डालियों पर बैठी हुई चहचहाती, मेरे कलरव से सारा बाग गूँज उठता।"

उमा ने छेड़कर कहा, "नौगढ़ की रानी ऐसे कितने ही पक्षियों का गाना जब चाहे सुन सकती है।"

प्रभा ने संकुचित होकर कहा, "मुझे नौगढ़ की रानी बनने की अभिलाषा नहीं है। मेरे लिए किसी नदी का सुनसान किनारा चाहिए। एक वीणा और ऐसी ही सुंदर सुहावने पक्षियों के संगीत की मधुर ध्वनि में मेरे लिए सारे संसार का ऐश्वर्य भरा हुआ है।"

प्रभा का संगीत पर अपरिमित प्रेम था। वह बहुधा ऐसे ही सुख-स्वप्न देखा करती थी। उमा उत्तर देना ही चाहती थी कि इतने में बाहर से किसी के गाने की आवाज आई, "कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

प्रभा ने एकाग्र मन होकर सुना और अधीर होकर कहा, "बहिन, इस वाणी में जादू है। मुझसे अब बिना सुने नहीं रहा जाता, इसे भीतर बुला लाओ।" उस पर भी गीत का जादू असर कर रहा था। वह बोली, "निस्संदेह, ऐसा राग मैंने आज तक नहीं सुना, खिड़की खोलकर बुलाती हूँ।"

थोड़ी देर में रागिया भीतर आया, "सुंदर-सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर कंधे पर एक मृगचर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविंद से तेज छिटक रहा था। उसने दबी हुई दृष्टि से दोनों कोमलांगी रमणियों को देखा और सिर झुकाकर बैठ गया।

प्रभा ने झिझकती हुई आँखों से देखा और दृष्टि नीचे कर ली। उमा ने कहा, "योगीजी, हमारे बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए, हमको भी कोई पद सुनाकर कृतार्थ कीजिए।"

योगी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "हम योगी लोग नारायण का भजन करते हैं। ऐसे-ऐसे दरबारों में हम भला क्या गा सकते हैं, पर आपकी इच्छा है तो सुनिए,

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।

कहाँ वह प्रीति, कहाँ यह बिछरन,

कहाँ मधुवन की रीति,

कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

योगी का रसीला करुण स्वर, सितार का सुमधुर निनाद, उस पर गीत का माधुर्य प्रभा को बेसुध किए देता था। इसका रसज्ञ स्वभाव और उसका मधुर रसीला गान, अपूर्व संयोग था। जिस भाँति सितार की ध्वनि गगनमंडल में प्रतिध्वनित हो रही थी, उस भाँति प्रभा के हृदय में लहरों की हिलोरे उठ रही थीं। वे भावनाएँ जो अब तक शांत थीं, जाग पड़ीं। हृदय सुख-स्वप्न देखने लगा। सतीकुंड के कमल तिलिस्म की परियाँ बन-बनकर मँडराते हुए भाँरों से कर जोड़ सजल नयन हो, कहते थे-

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

सुख और हरी पत्तियों से लदी हुई डालियाँ सिर झुकाए चहचहाते हुए पक्षियों से रो-रोकर कहती थीं-

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

और राजकुमारी प्रभा का हृदय भी सितार की मस्तानी तान के साथ गूँजता था-

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

प्रभा बघौली के राव देवीचंद की इकलौती कन्या थी। राव पुराने विचारों के रईस थे। कृष्ण की उपासना में लवलीन रहते थे, इसलिए इनके दरबार में दूर-दूर के कलावंत और गवैये आया करते और इनाम-एकराम पाते थे। राव साहब को गानों से प्रेम था, वे स्वयं भी इस विद्या में निपुण थे। यद्यपि अब वृद्धावस्था के कारण यह शक्ति निःशेष हो चली थी, पर फिर भी विद्या के गूढ़ तत्त्वों के पूर्ण जानकार थे। प्रभा बाल्यकाल से ही इनकी सोहबतों में बैठने लगी। कुछ तो पूर्वजन्म का संस्कार और कुछ रात-दिन गाने की ही चर्चाओं ने उसे भी इस फन में अनुरक्त कर दिया था। इस समय उसके सौंदर्य की खूब चर्चा थी। राव साहब ने

नोंगढ़ के नवयुवक और सुशील राजा हरिश्चंद्र से उसकी शादी तजवीज की थी। उभय पक्ष में तैयारियाँ हो रही थीं। राजा हरिश्चंद्र मेयो कॉलेज अजमेर के विद्यार्थी और नई रोजनी के भक्त थे। उनकी आकांक्षा थी कि उन्हें एक बार राजकुमारी प्रभा से साक्षात्कार होने और प्रेमालाप करने का अवसर दिया जाए, किंतु राव साहब इस प्रथा को दूषित समझते थे।

प्रभा राजा हरिश्चंद्र के नवीन विचारों की चर्चा सुनकर इस संबंध से बहुत संतुष्ट न थी। पर जब से उसने इस प्रेममय युवा योगी का गाना सुना था, तब से तो वह उसी के ध्यान में डूबी रहती। उमा उसकी सहेली थी। इन दोनों के बीच कोई परदा न था। परंतु इस भेद को प्रभा ने उससे भी गुप्त रखा। उमा उसके स्वभाव से परिचित थी, ताड़ गई। परंतु उसने उपदेश करके इस अग्नि को भड़काना उचित न समझा। उसने सोचा कि थोड़े दिनों में ये अग्नि आप से आप शांत हो जाएगी। ऐसी लालसाओं का अंत प्रायः इसी तरह हो जाया करता है किंतु उसका अनुमान गलत सिद्ध हुआ। योगी की वह मोहिनी मूर्ति कभी प्रभा की आँखों से न उतरती, उसका मधुर राग प्रतिक्षण उसके कानों में गूँजा करता। उसी कुंड के किनारे वह सिर झुकाए सारे दिन बैठी रहती। कल्पना में वही मधुर हृदयग्राही राग सुनती और वही योगी की मनोहरणी मूर्ति देखती। कभी-कभी उसे ऐसा आभास होता कि बाहर से यह आवाज आ रही है। वह चौंके पड़ती और तृष्णा से प्रेरित होकर वाटिका की चारदीवारी तक जाती और वहाँ से निराश होकर लौट आती। फिर आप ही विचार करती, "यह मेरी क्या दशा है! मुझे यह क्या हो गया है! मैं हिंदू कन्या हूँ, माता-पिता जिसे साँप दें, उसकी दासी बनकर रहना धर्म है। मुझे तन-मन से उसकी सेवा करनी चाहिए। किसी अन्य पुरुष का ध्यान तक मन में लाना मेरे लिए पाप है! आह! यह कलुषित हृदय लेकर मैं किस मुँह से पति के पास जाऊँगी! इन कानों से क्योंकर प्रणय की बातें सुन सकूँगी, जो मेरे लिए व्यंग्य से भी अधिक कर्णकटु होंगी। इन पापी नेत्रों से वह प्यारी-प्यारी चितवन कैसे देख सकूँगी, जो मेरे लिए वज्र से भी हृदयभेदी होंगी। इस गले में वे मृदुल प्रेमबाहु पड़ेंगे जो लोहदंड से भी अधिक भारी और कठोर होंगे। प्यारे, तुम मेरे हृदय-मंदिर से निकल जाओ। यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं। मेरा वश होता तो तुम्हें हृदय की सेज पर सुलाती; परंतु मैं धर्म की रस्सियों में बँधी हूँ।"



इस तरह एक महीना बीत गया। ब्याह के दिन निकट आते जाते थे और प्रभा का कमल-सा मुख कुम्हलाया जाता था। कभी-कभी विरह-वेदना एवं विचार-विप्लव से व्याकुल होकर उसका चित्त चाहता कि सतीकुंड की गोद में शांति लूँ, किंतु राव साहब इस शोक में जान ही दे देंगे, यह विचार कर वह रुक जाती। सोचती, मैं उनकी जीवन-सर्वस्व हूँ, मुझ अभागिनी को उन्होंने किस लाड़-प्यार से पाला है मैं ही उनके जीवन का आधार और अंतकाल ही आशा हूँ। नहीं, यों प्राण देकर उनकी आशाओं की हत्या न करूँगी। मेरे हृदय पर चाहे जो बीते, उन्हें न कुढ़ाऊँगी। प्रभा का एक योगी गवैये के पीछे उन्मत्त हो जाना कुछ शोभा नहीं देता। योगी का गान तानसेन के गानों से भी अधिक मनोहर क्यों न हो, पर एक राजकुमारी का उसके हाथों बिक जाना हृदय की दुर्बलता प्रकट करता है राव साहब के दरबार में विद्या की, शौर्य की और वीरता से प्राण हवन करने की चर्चा न थी। यहाँ तो रात-दिन राग-रंग की धूम रहती थी। यहाँ इसी शास्त्र के आचार्य प्रतिष्ठा के मसनद पर विराजित थे और उन्हीं पर प्रशंसा के बहुमूल्य रत्न लुटाए जाते थे। प्रभा ने प्रारंभ ही से इसी जलवायु का सेवन किया था और उस पर इनका गाढ़ा रंग चढ़ गया था। ऐसी अवस्था में उसकी गान-लिप्सा ने यदि भीषण रूप धारण कर लिया तो आश्चर्य ही क्या है।

शादी बड़ी धूमधाम से हुई। राव साहब ने प्रभा को गले लगाकर विदा किया। प्रभा बहुत रोई। उमा को वह किसी तरह छोड़ती न थी।

नौगढ़ एक बड़ी रियासत थी और राजा हरिश्चंद्र के सुप्रबंध से उन्नति पर थी। प्रभा की सेवा के लिए दासियों की एक पूरी फौज थी। उसके रहने के लिए वह आनंद-भवन सजाया गया था, जिसके बनाने में शिल्प-विशारदों ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया था। शृंगार-चतुराओं ने दूल्हिन को खूब सँवारा। रसीले राजा साहब अधरामृत के लिए विह्वल हो रहे थे। अंतपुर में गए। प्रभा ने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, उनका अभिवादन किया। उसकी आँखों से आँसू की नदी बह रही थी। पति ने प्रेम के मद में मत्त होकर घूँघट हटा दिया, दीपक था, पर बुझा हुआ। फूल था, पर मुरझाया हुआ।

दूसरे दिन से राजा साहब की यह दशा हुई कि भौरै की तरह प्रति क्षण इस फूल पर मँडराया करते। न राज-पाट की चिंता थी, न सैर-शिकार की परवाह। प्रभा की वाणी रसीला राग थी, उसकी चितवन सुख का सागर और उसका मुख-चंद्र आमोद का सुहावना कुंज। बस, प्रेम-मद में राजा साहब बिलकुल मतवाले हो गए थे, उन्हें क्या मालूम था कि दूध में मक्खी है।

यह असंभव था कि राजा साहब के हृदयहारी और सरस व्यवहार का, जिसमें अनुराग भरा हुआ था, प्रभा पर कोई प्रभाव न पड़ता। प्रेम का प्रकाश अँधेरे हृदय को भी चमका देता है। प्रभा मन में बहुत लज्जित होती। वह अपने को इस निर्मल और विशुद्ध प्रेम के योग्य न पाती थी, इस पवित्र प्रेम के बदले में उसे अपने कृत्रिम, रँगे हुए भाव प्रकट करते हुए मानसिक कष्ट होता था। जब तक राजा साहब उसके साथ रहते, वह उनके गले लता की भाँति लिपटी हुई घंटों प्रेम की बातें किया करती। वह उनके साथ सुमन-वाटिका में चुहल

करती, उनके लिए फूलों का हार गुँथती और उनके गले में हार डालकर कहती, "प्यारे, देखना ये फूल मुरझा न जाएँ, इन्हें सदा ताजा रखना।" वह चाँदनी रात में उनके साथ नाव पर बैठकर झील की सैर करती और उन्हें प्रेम का राग सुनाती। यदि उन्हें बाहर से आने में जरा भी देर हो जाती, तो वही मीठा-मीठा उलाहना देती, उन्हें निर्दय तथा निष्ठुर कहती। उनके सामने वह स्वयं हँसती, उसकी आँखें हँसती और आँखों का काजल भी हँसता था। किंतु आह! जब वह अकेली होती, उसका चंचल चित्त उड़कर उसी कुंड के तट पर जा पहुँचता—कुंड का वह नीला-नीला पानी, उस पर तैरते हुए कमल और मौलसिरी की वृक्ष-पत्तियों का सुंदर दृश्य आँखों के सामने आ जाता। उमा मुसकराती और नजाकत से लचकती हुई आ पहुँचती, तब रसीले योगी की मोहिनी छाँवे आँखों में आ बैठती और सितार से सुललित सुर गूँजने लगते—

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

तब वह एक दीर्घ निःश्वास लेकर उठ बैठती और बाहर निकलकर पिंजरे में चहकते हुए पक्षियों के कलरव में शांति प्राप्त करती। इस भाँति यह स्वप्न तिरोहित हो जाता।

इस तरह कई महीने बीत गए। एक दिन राजा हरिश्चंद्र प्रभा को अपनी चित्रशाला में ले गए। उसके प्रथम भाग में ऐतिहासिक चित्र थे। सामने ही शूरवीर महाराणा प्रतापसिंह का चित्र नजर आया। मुखारविंद से वीरता की ज्योति स्फुटित हो रही थी। तनिक और आगे बढ़कर दाहिनी ओर स्वामिभक्त जगमल, वीरवर साँगा और दिलेर दुर्गादास विराजमान थे। बाईं ओर उदार भीमसिंह बैठे हुए थे। राणा प्रताप के सम्मुख महाराष्ट्र के सरी वीर शिवाजी का चित्र था। दूसरे भाग में कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम विराजते थे। चतुर चित्रकारों ने चित्र-निर्माण में अपूर्व काँशल दिखाया था। प्रभा ने प्रताप के पाद-पद्मों को चूमा और वह कृष्ण के सामने देर तक नेत्रों में प्रेम और श्रद्धा के आँसू भरे, मस्तक झुकाए खड़ी रही। उसके हृदय पर इस समय कलुषित प्रेम का भय खटक रहा था। उसे मालूम होता था कि यह उन महापुरुषों के चित्र नहीं, उनकी पवित्र आत्माएँ हैं। उन्हीं के चरित्र से भारतवर्ष का इतिहास गौरवान्वित है। वीरता के बहुमूल्य जातीय रत्न उच्चकोटि के जातीय स्मारक और गगनभेदी जातीय तुमुल ध्वनि हैं। ऐसी उच्च आत्माओं के सामने खड़े होते उसे संकोच होता था। वह आगे बढ़ी, दूसरा भाग सामने आया। यहाँ ज्ञानमय बुद्ध योगसाधना में बैठे हुए दीख पड़े। उनकी दाहिनी ओर शास्त्रज्ञ शंकर थे और दार्शनिक दयानंद। एक दीवार पर गुरु गोविंद अपने देश और जाति पर बलि चढ़ने वाले दोनों बच्चों के साथ विराजमान थे। दूसरी दीवार पर वेदांत की ज्योति फैलाने वाले स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंद विराजमान थे। चित्रकारों की योग्यता एक-एक अवयव से टपकती थी। प्रभा ने इनके चरणों पर मस्तक टेका। वह उनके सामने सिर न उठा सकी। उसे अनुभव होता था कि दिव्य आँखें उसके दूषित हृदय में चुभी जाती हैं।

इसके बाद तीसरा भाग आया। यह प्रतिभाशाली कवियों की सभा थी। सर्वोच्च स्थान पर आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास सुशोभित थे। दाहिनी ओर शृंगार रस के अद्वितीय कवि कालीदास थे, बाईं तरफ गंभीर भावों से पूर्ण भवभूति। निकट ही भर्तृहरि अपने

संतोषाश्रम में बैठे हुए थे।

दक्षिण की दीवार पर राष्ट्रभाषा हिंदी के कवियों का सम्मेलन था। सहृदय कवि, सूर, तेजस्वी तुलसी, सुकवि केशव और रसिक बिहारी यथाक्रम विराजमान थे। सूरदास से प्रभा का अगाध प्रेम था। वह समीप जाकर उनके चरणों पर मस्तक रखना ही चाहती थी कि अकस्मात् उन्हीं चरणों के सम्मुख सर झुकाए उसे एक छोटा सा चित्र दिखाई पड़ा। प्रभा उसे देखकर चौंक पड़ी। यह वही चित्र था, जो उसके हृदय-पट पर खिंचा हुआ था। वह खुलकर उसकी तरफ ताक न सकी, दबी हुई आँखों से देखने लगी। राजा हरिश्चंद्र ने मुसकराकर पूछा, "इस व्यक्ति को तुमने कहीं देखा है?"

इस प्रश्न से प्रभा का हृदय काँप उठा। जिस तरह मृग-शावक व्याध के सामने व्याकुल होकर इधर-उधर देखता है, उसी तरह प्रभा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से दीवार की ओर ताकने लगी। सोचने लगी, 'क्या उत्तर दूँ? इसको कहीं देखा है, उन्होंने यह प्रश्न मुझसे क्यों किया? कहीं ताड़ तो नहीं गए? हे नारायण! मेरा तप तुम्हारे हाथ है, क्योंकि इनकार करूँ?' मुँह पीला हो गया। सिर झुकाकर क्षीण स्वर में बोली, "हाँ, ध्यान आता है कि कहीं देखा है।"

हरिश्चंद्र ने कहा, "कहाँ देखा है?"

प्रभा के सिर में चक्कर सा आने लगा। बोली, "शायद एक बार यह गाता हुआ मेरी वाटिका के सामने जा रहा था। उमा ने बुलाकर इसका गाना सुना था।"

हरिश्चंद्र ने पूछा, "कैसा गाना था?"

प्रभा के होश उड़े हुए थे। सोचती थी, राजा के इन सवालों में जरूर कोई बात है। देखूँ, लाज रहती है या नहीं। बोली, "उसका गाना ऐसा बुरा न था।"

हरिश्चंद्र ने मुसकराकर कहा, "क्या गाता था?"

प्रभा ने सोचा, इन प्रश्न का उत्तर दे दूँ तो बाकी क्या रहता है। उसे विश्वास हो गया कि आज कुशल नहीं है, वह छत की ओर निरखती हुई बोली, "सूरदास का कोई पद था।"

हरिश्चंद्र ने कहा, "यह तो नहीं,

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

प्रभा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर घूमने लगा, वह खड़ी न रह सकी, बैठ गई और हताश होकर बोली, "हाँ, यह पद था।" फिर उसने कलेजा मजबूत करके पूछा, "आपको कैसे मालूम हुआ?"

हरिश्चंद्र बोले, "वह योगी मेरे यहाँ अक्सर आया-जाया करता है। मुझे भी उसका गाना पसंद है। उसी ने मुझे यह हाल बताया था, किंतु वह तो कहता था कि राजकुमारी ने मेरे गानों को बहुत पसंद किया और पुनः आने के लिए आदेश किया।"

प्रभा को अब सच्चा क्रोध दिखाने का अवसर मिल गया। वह बिगड़कर बोली, "यह बिलकुल झूठ है। मैंने उससे कुछ नहीं कहा।"

हरिश्चंद्र बोले, "यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि उन महाशय की चालाकी है। डींग मारना गवैयों की आदत है परंतु इसमें तो तुम्हें इनकार नहीं कि उसका गान बुरा न था?"

प्रभा बोली, "ना! अच्छी चीज को बुरा कौन कहेगा?"

हरिश्चंद्र ने पूछा, "फिर सुनना चाहो तो उसे बुलवाऊँ। सिर के बल दौड़ा आएगा।"

क्या उनके दर्शन फिर होंगे? इस आशा से प्रभा का मुखमंडल विकसित हो गया। परंतु इन कई महीनों की लगातार कोशिश से जिस बात को भुलाने में वह किंचित् सफल हो चुकी थी, उसके फिर नवीन हो जाने का भय हुआ। बोली, "इस समय गाना सुनने को मेरा जी नहीं चाहता।"

राजा ने कहा, "यह मैं न मानूँगा कि तुम और गाना नहीं सुनना चाहती, मैं उसे अभी बुलाए लाता हूँ।"

यह कहकर राजा हरिश्चंद्र तीर की तरह कमरे से बाहर निकल गए। प्रभा उन्हें रोक न सकी। वह बड़ी चिंता में डूबी खड़ी थी। हृदय में खुशी और रंज की लहरें बारी-बारी से उठती थीं। मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि उसे सितार के मस्ताने सुर के साथ योगी की रसीली तान सुनाई दी-

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।"

वह हृदयग्राही राग था, वही हृदय-भेदी प्रभाव, वही मनोहरता और वही सबकुछ, जो मन को मोह लेता है। एक क्षण में योगी की मोहिनी मूर्ति दिखाई दी थी।

वह मस्तानापन, वही मतवाले नेत्र, वही नयनाभिराम देवताओं का सा स्वरूप। मुखमंडल पर मंद-मंद मुसकान थी। प्रभा ने उसकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा। एकाएक उसका हृदय उछल पड़ा। उसकी आँखों के आगे से एक परदा हट गया। प्रेम-विह्वल हो, आँखों में आँसू भरे वह अपने पति के चरणरविंदों पर गिर पड़ी और गद्गद कंठ से बोली, "प्यारे प्रियतम!"

राजा हरिश्चंद्र को आज सच्ची विजय प्राप्त हुई। उन्होंने प्रभा को उठाकर छाती से लगा लिया। दोनों आज एक प्राण हो गए।

राजा हरिश्चंद्र ने कहा, "जानती हो, मैंने यह स्वाँग क्यों रचा था? गाने का मुझे सदा से व्यसन है और सुना है तुम्हें भी इसका शौक है। तुम्हें अपना हृदय भेंट करने से प्रथम एक बार तुम्हारा दर्शन करना आवश्यक प्रतीत हुआ और उसके लिए सबसे सुगम उपाय यही सूझ पड़ा।"

प्रभा ने अनुराग से देखकर कहा, "योगी बनकर तुमने जो कुछ पा लिया, वह राजा रहकर

कदापि न पा सकते। अब तुम मेरे पति हो और प्रियतम भी हो पर तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया और मेरी आत्मा को कलंकित किया। इसका उत्तरदाता कौन होगा?"



भाड़े के टट्टू

आगरा कॉलेज के मैदान में संध्या-समय दो युवक हाथ-से-हाथ मिलाए टहल रहे थे। एक का नाम यशवंत था, दूसरे का रमेश।

यशवंत डीलडॉल का ऊँचा और बलिष्ठ था। उसके मुख पर संयम और स्वास्थ्य की कांति झलकती थी। रमेश छोटे कद और इकहरे बदन का, तेजहीन और दुर्बल आदमी था। दोनों में किसी विषय पर बहस हो रही थी।

यशवंत, "हाँ, देख लेना। तुम ताना मार रहे हो, लेकिन मैं दिखला दूँगा कि धन को कितना तुच्छ समझता हूँ?"

रमेश, "खैर, दिखला देना। मैं तो धन को तुच्छ नहीं समझता। धन के लिए 15 वर्षों से किताब चाट रहा हूँ, धन के लिए माँ-बाप, भाई-बहिन सबसे अलग यहाँ पड़ा हूँ, न जाने अभी कितनी सलामियाँ देनी पड़ेगी, कितनी खुशामद करनी पड़ेगी। क्या इसमें आत्मा का पतन न होगा? मैं तो इतने ऊँचे आदर्श का पालन नहीं कर सकता। यहाँ तो अगर किसी मुकदमे में अच्छी रिश्तत पा जाएँ तो शायद छोड़ न सकें। क्या तुम छोड़ दोगे?"

यशवंत, "मैं उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा और मुझे विश्वास है कि तुम जितने नीच बनते हो, उतने नहीं हो।"

रमेश, "मैं उससे कहीं नीच हूँ, जितना कहता हूँ।"

यशवंत, "मुझे तो यकीन नहीं आता कि स्वार्थ के लिए तुम किसी को नुकसान पहुँचा सकोगे?"

रमेश, "भाई, संसार में आदर्श का निर्वाह केवल संन्यासी ही कर सकता है मैं तो नहीं कर सकता। मैं तो समझता हूँ कि अगर तुम्हें धक्का देकर तुमसे बाजी जीत सकूँ, तो तुम्हें जरूर गिरा दूँगा और बुरा न मानो तो कह दूँ, तुम भी मुझे जरूर गिरा दोगे। स्वार्थ का त्याग करना कठिन है।"

यशवंत, "तो मैं कहूँगा कि तुम भाड़े के टटू हो।"

रमेश, "और मैं कहूँगा कि तुम काठ के उल्लू हो।"

यशवंत और रमेश साथ-साथ स्कूल में दाखिल हुए और साथ-ही-साथ उपाधियाँ लेकर कॉलेज से निकले। यशवंत कुछ मंदबुद्धि, पर बला का मेहनती था। जिस काम को हाथ में लेता, उससे चिपट जाता और उसे पूरा करके ही छोड़ता। रमेश तेजस्वी था पर आलसी। घंटे-भर भी जमकर बैठना उसके लिए मुश्किल था। एम-ए- तक तो वह आगे रहा और यशवंत पीछे, मेहनत बुद्धि-बल से परास्त होती रही; लेकिन सिविल सर्विस में पासा पलट गया। यशवंत सब धंधे छोड़कर किताबों पर पिल पड़ा, घूमना-फिरना, सैर-सपाटा, सरकस-थिएटर, यार-दोस्त, सबसे मुँह मोड़कर अपनी एकांत कुटीर में जा बैठा। रमेश दोस्तों के साथ गपशप उड़ाता, क्रिकेट खेलता रहा। कभी-कभी मनोरंजन के तौर पर किताब देख लेता। कदाचित् उसे विश्वास था कि अब की भी मेरी तेजी बाजी ले जाएगी। अकसर जाकर यशवंत को परेशान करता, उसकी किताब बंद कर देता; कहता, "क्यों प्राण दे रहे हो? सिविल सर्विस कोई मुक्ति तो नहीं है, जिसके लिए दुनिया से नाता तोड़ लिया जाए।" यहाँ तक कि यशवंत उसे आते देखता, तो किवाड़ बंद कर लेता।

आखिर परीक्षा का दिन आ पहुँचा। यशवंत ने सबकुछ याद किया, पर किसी प्रश्न का उत्तर सोचने लगता तो उसे मालूम होता, मैंने जितना पढ़ा था, सब भूल गया। वह बहुत घबराया हुआ था। रमेश पहले से कुछ सोचने का आदी न था। सोचता, जब परचा सामने आएगा, उस वक्त देखा जाएगा। वह आत्मविश्वास से फूला-फूला फिरता था।

परीक्षा का फल निकला तो सुस्त कछुआ तेज खरगोश से बाजी मार ले गया था।

अब रमेश की आँखें खुलीं, पर वह हताश न हुआ। योग्य आदमी के लिए यश और धन की कमी नहीं, यह उसका विश्वास था। उसने कानून की परीक्षा की तैयारी शुरू की और यद्यपि उसने बहुत ज्यादा मेहनत न की, लेकिन अव्वल दर्जे में पास हुआ। यशवंत ने उसको बधाई का तार भेजा; वह अब एक जिले का अफसर हो गया था।

दस साल गुजर गए। यशवंत दिलोजान से काम करता था और उसके अफसर उससे बहुत प्रसन्न थे। पर अफसर जितने प्रसन्न थे, मातहत उतने ही अप्रसन्न रहते थे। वह खुद जितनी मेहनत करता था, मातहतों से भी उतनी ही मेहनत लेना चाहता था, खुद जितना बेलौस था, मातहतों को भी उतना ही बेलौस बनाना चाहता था। ऐसे आदमी बड़े कारगुजार समझे जाते हैं। यशवंत की कारगुजारी का अफसरों पर सिक्का जमता जाता था। पाँच वर्षों में ही वह जिले का जज बना दिया गया।

रमेश इतना भाग्यशाली न था। वह जिस इजलास में वकालत करने जाता, वहीं असफल रहता। हाकिम को नियत समय पर आने में देर हो जाती तो खुद भी चल देता और फिर बुलाने से भी न आता। कहता, "अगर हाकिम वक्त की पाबंदी नहीं करता तो मैं क्यों करूँ?"

मुझे क्या गरज पड़ी है कि घंटों उनके इजलास पर खड़ा उनकी राह देखा करूँ?" बहस इतनी निर्भीकता से करता है कि खुशामद के आदी हुक्काम की निगाहों में उसकी निर्भीकता गुस्ताखी मालूम होती। सहनशीलता उसे छू नहीं गई थी। हाकिम हो या दूसरे पक्ष का वकील, जो उसके मुँह लगता, उसकी खबर लेता था। यहाँ तक कि एक बार वह जिला जज ही से लड़ बैठा। फल यह हुआ कि उसकी सनद छीन ली गई, किंतु मुवक्किलों के हृदय में उसका सम्मान ज्यों-का-त्यों रहा।

तब उसने आगरा कॉलेज में शिक्षक का पद प्राप्त कर लिया, किंतु यहाँ भी दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा। प्रिंसिपल से पहले ही दिन खटखट हो गई। प्रिंसिपल का सिद्धांत यह था कि विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रहना चाहिए। वह अपने कॉलेज के किसी छात्र को किसी राजनीतिक जलसे में शरीक न होने देते। रमेश पहले ही दिन इस आज्ञा का खुल्लमखुल्ला विरोध करने लगा। उसका कथन था कि अगर किसी को राजनीतिक जलसों में शामिल होना चाहिए तो विद्यार्थी को। यह भी उसकी शिक्षा का एक अंग है। अन्य देशों में छात्रों ने युगांतर उपस्थित कर दिया है तो इस देश में क्यों उनकी जुबान बंद की जाती है। इसका फल यह हुआ कि साल खत्म होने से पहले ही रमेश को इस्तीफा देना पड़ा, किंतु विद्यार्थियों पर उसका दबाव तिल भर भी कम न हुआ।

इस भाँति कुछ तो अपने स्वभाव और कुछ परिस्थितियों ने रमेश को मार-मारकर हाकिम बना दिया। पहले मुवक्किलों का पक्ष लेकर अदालत से लड़ा, फिर छात्रों का पक्ष लेकर प्रिंसिपल से राड़ मोड़ ली और अब प्रजा का पक्ष लेकर सरकार को चुनौती दी। वह स्वभाव से ही निर्भीक, आदर्शवादी, सत्यभक्त तथा आत्माभिमानि था। ऐसे प्राणी के लिए प्रजा-सेवक बनने के सिवा और उपाय ही क्या था? समाचार-पत्रों में वर्तमान परिस्थिति पर उसके लेख निकलने लगे। उसकी आलोचनाएँ इतनी स्पष्ट, इतनी व्यापक और इतनी मार्मिक होती थीं कि शीघ्र ही उसकी कीर्ति फैल गई। लोग मान गए कि इस क्षेत्र में एक नई शक्ति का उदय हुआ है। अधिकारी लोग उसके लेख पढ़कर तिलमिला उठते थे। उसका निशाना ठीक बैठता था, उससे बच निकलना असंभव था। अतिशयोक्तियाँ तो उनके सिरों पर से सनसनाती हुई निकल जाती थीं। उनका वे दूर से तमाशा देख सकते थे, अभिज्ञताओं की वे उपेक्षा कर सकते थे। ये सब शस्त्र उनके पास पहुँचते ही न थे, रास्ते ही में गिर पड़े थे। पर रमेश के निशाने सिरों पर बैठते और अधिकारियों में हलचल और हाहाकार मचा देते थे।

देश की राजनीतिक स्थिति चिंताजनक हो रही थी। यशवंत अपने पुराने मित्र के लेखों को पढ़-पढ़कर काँप उठते थे। भय होता, कहीं वह कानून के पंजे में न आ जाए। बार-बार उसे संयत रहने की ताकीद करते, बार-बार मिन्नतें करते कि जरा अपनी कलम को और नरम कर दो, जान-बूझकर क्यों विषधर कानून के मुँह में उँगली डालते हो? लेकिन रमेश को नेतृत्व का नशा चढ़ा हुआ था। वह इन पत्रों का जवाब तक न देता था।

पाँचवें साल यशवंत बदलकर आगरा का जिला-जज हो गया।

देश की राजनीतिक दशा चिंताजनक हो रही थी। खुफिया पुलिस ने एक तूफान खड़ा कर दिया था। उसकी कपोलकल्पित कथाएँ सुन-सुन कर हुक्कामों की रूह फना हो रही थी। कहीं अखबारों का मुँह बंद किया जाता था, कहीं प्रजा के नेताओं का। खुफिया पुलिस ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए हुक्कामों के कुछ इस तरह कान भरे कि उन्हें हर एक स्वतंत्र विचार रखने वाला आदमी खूनी और कातिल नजर आता था।

रमेश यह अंधेर देखकर चुप बैठने वाला मनुष्य न था। ज्यों-ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती थी, त्यों-त्यों उसका भी जोश बढ़ता था। रोज कहीं-न-कहीं व्याख्यान देता; उसके प्रायः सभी व्याख्यान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे। स्पष्ट और खरी बातें कहना ही विद्रोह है। अगर किसी का राजनीतिक भाषण विद्रोहात्मक नहीं माना गया तो समझ लो, उसने अपने आंतरिक भावों को गुप्त रखा है। उसके दिल में जो कुछ है, उसे जबान पर लाने का साहस उसमें नहीं है। रमेश ने मनोभावों को गुप्त रखना सीखा ही न था। वह सबकुछ सहने तो तैयार बैठा था। अधिकारियों की आँखों में भी वह सबसे ज्यादा गड़ा हुआ था।

एक दिन यशवंत ने रमेश को अपने यहाँ बुला भेजा। रमेश के जी में तो आया कि कह दे, तुम्हें आते क्या शरम आती है? आखिर हो तो गुलाम ही। लेकिन फिर कुछ सोचकर कहला भेजा, कल शाम को आऊँगा। दूसरे दिन वही ठीक 6 बजे यशवंत के बँगले पर जा पहुँचा। उसने किसी से इसका जिक्र न किया। कुछ तो यह खयाल था कि लोग कहेंगे, मैं अफसरों की खुशामद करता हूँ और कुछ यह कि शायद इससे यशवंत को कोई हानि पहुँचे।

वह यशवंत के बँगले पर पहुँचा तो चिराग जल चुके थे। यशवंत ने आकर उसे गले से लगा लिया। आधी रात तक दोनों मित्रों में खूब बातें होती रहीं। यशवंत ने इतने समय में नौकरी के जो अनुभव प्राप्त किए, सब बयान किए। रमेश को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यशवंत के राजनीतिक विचार कितने विषयों में मेरे विचारों से भी ज्यादा स्वतंत्र हैं। उसका यह खयाल बिलकुल गलत निकला कि वह बिलकुल बदल गया होगा, कादारी के राग अलापता होगा।

रमेश ने कहा, "भले आदमी, जब इतने जले हुए हो तो छोड़ क्यों नहीं देते नौकरी? और कुछ न सही, अपनी आत्मा की रक्षा तो कर सकोगे।"

नौकरी? और कुछ न सही, अपनी आत्मा की रक्षा तो कर सकोगे।"

यशवंत, "मेरी चिंता पीछे करना, इस समय अपनी चिंता करो। मैंने तुम्हें सावधान करने को बुलाया है। इस वक्त सरकार की नजर में तुम बेतरह खटक रहे हो। मुझे भय है कि तुम कहीं पकड़े न जाओ।"

रमेश, "इसके लिए तो तैयार बैठा हूँ।"

यशवंत, "आखिर आग में कूदने से लाभ ही क्या?"

रमेश, "हानि-लाभ देखना मेरा काम नहीं। मेरा काम तो अपने कर्तव्य का पालन करना है।"

यशवंत, "हठी तो तुम सदा के हो, मगर मौका नाजुक है, सँभले रहना ही अच्छा है। अगर मैं देखता कि जनता में वास्तविक जागृति है, तो तुमसे पहले मैदान में आता। पर जब देखता हूँ कि अपने ही मरे स्वर्ग देखना है तो आगे कदम रखने की हिम्मत नहीं पड़ती।"

दोनों दोस्तों ने देर तक बातें कीं। कॉलेज के दिन याद आए। कॉलेज के सहपाठियों की पुरानी स्मृतियाँ मनोरंजन और हास्य का अविरल झरोता हुआ करती हैं। अध्यापकों पर आलोचनाएँ हुईं, कौन-कौन साथी क्या कर रहा है, इसकी चर्चा हुई। बिलकुल यह मालूम होता था कि दोनों अब भी कॉलेज के छात्र हैं। गंभीरता नाम को भी न थी।

रात ज्यादा हो गई, भोजन करते-करते एक बज गया। यशवंत ने कहा, "अब कहाँ जाओगे, यहीं सो जाओ, और बातें होंगी। तुम तो कभी आते भी नहीं?" रमेश तो रमते जोगी थे ही; खाना खाकर वह बात करते-करते सो गए। नींद खुली तो 9 बज गए थे। यशवंत सामने खड़ा मुसकरा रहा था। इसी रात को आगरे में भयंकर डाका पड़ गया।

रमेश 10 बजे घर पहुँचा तो देखा, पुलिस ने उसका मकान घेर रखा है। इन्हें देखते ही एक अफसर ने वारंट दिखाया। तुरंत घर की तलाशी होने लगी। मालूम नहीं, क्योंकि रमेश के मेज की दराज में एक पिस्तौल निकल आया। फिर क्या था, हाथों में हथकड़ी पड़ गई। अब किसे उनके डाके में शरीक होने से इनकार हो सकता था, और भी कितने ही आदमियों पर आफत आई। सभी प्रमुख नेता चुन लिए गए। मुकदमा चलने लगा।

औरों की बात को ईश्वर जाने, पर रमेश निरपराध था। इसका उसके पास ऐसा प्रबल प्रमाण था, जिसकी सत्यता से किसी को इनकार न हो सकता था। पर क्या वह इस प्रमाण का उपयोग कर सकता था?

रमेश ने सोचा, यशवंत स्वयं मेरे वकील द्वारा सफाई के गवाहों में अपना नाम लिखवाने का प्रस्ताव करेगा। मुझे निर्दोष जानते हुए वह कभी मुझे जेल न जाने देगा। वह इतना हृदयशून्य नहीं है। लेकिन दिन गुजरते जाते थे और यशवंत की ओर से इस प्रकार का कोई प्रस्ताव न होता था; रमेश खुद संकोचवश उसका नाम लिखवाते हुए डरता था। न जाने इसमें उसे क्या बाधा हो। अपनी रक्षा के लिए वह उसे संकट में न डालना चाहता था।

यशवंत हृदयशून्य न था, भावशून्य न था, लेकिन कर्मशून्य था। उसे अपने परम मित्र को निर्दोष मारे जाते देखकर दुःख होता था, कभी-कभी रो पड़ता था; पर इतना साहस न होता कि सफाई देकर उसे छुड़ा ले। न जाने अफसरों को क्या महसूस हो? कहीं यह न समझने लगें कि मैं भी षड्यंत्रकारियों से सहानुभूति रखता हूँ, मेरा भी उनके साथ कुछ संपर्क है। यह मेरे हिंदुस्तानी होने का दंड है, जानकर जहर निगलना पड़ रहा है। पुलिस ने अफसरों पर इतना आतंक जमा दिया कि चाहे मेरी शहादत से रमेश छूट भी जाए, खुल्लमखुल्ला

मुझ पर अविश्वास न किया जाए, पर दिलों से यह संदेह क्योंकर दूर होगा कि मैंने केवल एक स्वदेश-बंधु को छुड़ाने के लिए झूठी गवाही दी? और बंधु भी कौन? जिस पर राज-विद्रोह का अभियोग है।

इसी सोच-विचार में एक महीना गुजर गया। उधर मजिस्ट्रेट ने यह मुकदमा यशवंत ही के इजलास में भेज दिया। डाके में कई खून हो गए थे और उस मजिस्ट्रेट को उतनी ही कड़ी सजाएँ देने का अधिकार न था जितनी उसके विचार में दी जानी चाहिए थी।



यशवंत अब बड़े संकट में पड़ा। उसने छुट्टी लेनी चाही; मंजूर न हुई। सिविल सर्जन अंग्रेज था। इस वजह से उसकी सनद लेने की हिम्मत न पड़ी। बला सिर पर आ पड़ी थी और उससे बचने का उपाय न सूझता था।

भाग्य की कुटिल क्रीड़ा देखिए। साथ खेले और साथ पढ़े हुए दो मित्र एक-दूसरे के सम्मुख खड़े थे, केवल एक कठघरे का अंतर था। पर एक की जान दूसरे की मुट्ठी में थी। दोनों की आँखें कभी चार न होतीं। दोनों सिर नीचा किए रहते थे। यद्यपि यशवंत न्याय के पद पर था और रमेश मुलजिम, लेकिन यथार्थ में दशा इसके प्रतिकूल थी। यशवंत की आत्मा लज्जा, ग्लानि और मानसिक पीड़ा से तड़पती थी और रमेश का मुख निर्दोषिता के प्रकाश से चमकता रहता था।

दोनों मित्रों में कितना अंतर था? एक उदार था, दूसरा कितना स्वार्थी? रमेश चाहता तो भरी अदालत में उस रात की बात कह देता। लेकिन यशवंत जानता था, रमेश फाँसी से बचने के लिए भी उस प्रमाण का आश्रय न लेगा, जिसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ।

जब तक मुकदमे की पेशियाँ होती रहीं, तब तक यशवंत को असह्य मर्मवेदना होती रही। उसकी आत्मा और स्वार्थ में नित्य संग्राम होता रहता था; पर फैसले के दिन तो उसकी वही दशा हो रही थी जो किसी खून के अपराधी की हो। इजलास पर जाने की हिम्मत न पड़ती थी। वह तीन बजे कचहरी पहुँचा। मुलजिम अपना भाग्य-निर्णय सुनने को तैयार खड़े थे। रमेश भी आज रोज से ज्यादा उदास था। उसके जीवन-संग्राम में वह अवसर आ गया था, जब उसका सिर तलवार की धार के नीचे होगा। अब तक भय सूक्ष्म रूप में था, आज उसने स्थूल रूप धारण कर लिया था।

यशवंत ने दृढ़ स्वर में फैसला सुनाया। जब उसके मुख से ये शब्द निकले कि रमेशचंद्र को 7 वर्ष की कठिन कारावास, तो उसका गला रुँध गया। उसने तजवीज मेज पर रख दी। कुरसी पर बैठकर पसीना पोंछने के बहाने आँखों से उमड़े हुए आँसुओं को पोंछा। इसके आगे तजवीज उससे न पढ़ी गई।

रमेश जेल से निकलकर पक्का क्रांतिकारी बन गया। जेल की अँधेरी कोठरी में दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद सुधार के मनसूबे बाँधा करता था। सोचता, मनुष्य क्यों पाप करता है? इसलिए न कि संसार में इतनी विषमता है। कोई तो विशाल भवनों में रहता है और किसी को पेड़ की छाँह भी मयस्सर नहीं। कोई रेशम और रत्नों से मढ़ा हुआ है, किसी को फटा वस्त्र भी नहीं। ऐसे न्यायविहीन संसार में यदि चोरी, हत्या और अधर्म है तो यह किसका दोष? वह एक ऐसी समिति खोलने का स्वप्न देखा करता, जिसका काम संसार से इस विषमता को मिटा देना हो। संसार सबके लिए है और उसमें सबको सुख भोगने का समान अधिकार है। न डाका, डाका है, न चोरी, चोरी। धनी अगर अपना धन खुशी से नहीं बाँट देता तो उसकी इच्छा के विरुद्ध बाँट लेने में क्या पाप? धनी उसे पाप कहता है तो कहे। उसका बनाया हुआ कानून दंड देना चाहता है तो दे। हमारी अदालत भी अलग होगी।

उसके सामने वे सभी मनुष्य अपराधी होंगे, जिनके पास जरूरत से ज्यादा सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं। हम भी उन्हें दंड देंगे, हम भी उनसे कड़ी मेहनत लेंगे। जेल से निकलते ही उसने इस सामाजिक क्रांति की घोषणा कर दी। गुप्त सभाएँ बनने लगीं, शस्त्र जमा किए जाने लगे और थोड़े ही दिनों में डाकों का बाजार गरम हो गया। पुलिस ने उसका पता लगाना शुरू कर दिया। उधर क्रांतिकारियों ने पुलिस पर भी हाथ साफ करना शुरू कर दिया। उनकी शक्ति दिन-दिन बढ़ने लगी। काम इतनी चतुराई से होता था कि किसी को अपराधी का कुछ सुराग न मिलता। रमेश कहीं गरीबों के लिए दवाखाना खोलता, कहीं बैंक डाके के रुपयों से उसने इलाके खरीदना शुरू किया। जहाँ कोई इलाका नीलाम होता, वह उसे खरीद लेता। थोड़े ही दिनों में उसके अधीन एक बड़ी जायदाद हो गई। इसका नफा गरीबों के उपकार में खर्च होता था। तुरंत यह कि सभी जानते थे, यह रमेश की करामात है, पर किसी की मुँह खोलने की हिम्मत न होती थी। सभ्य-समाज की दृष्टि में रमेश से ज्यादा घृणित और कोई प्राणी संसार में न था। लोग उसका नाम सुन कानों पर हाथ रख लेते थे। शायद उसे प्यासा मरता देखकर कोई एक बूँद पानी भी उसके मुँह में न डालता; लेकिन किसी की मजाल न थी कि उस पर आक्षेप कर सकें।

इस तरह कई साल गुजर गए। सरकार ने डाकुओं का पता लगाने के लिए बड़े-बड़े इनाम रखे। यूरोप से गुप्त पुलिस के सिद्धहस्त आदमियों को बुलाकर इस काम पर नियुक्त किया। लेकिन गजब के डकैत थे, जिनकी हिम्मत के आगे किसी की कुछ न चलती थी।

पर रमेश खुद अपने सिद्धांतों का पालन न कर सका। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे, उसे अनुभव होता था कि मेरे अनुयायियों में असंतोष बढ़ता जाता है। उनमें भी जो ज्यादा चतुर और साहसी थे, वे दूसरों पर रोब जमाते और लूट के माल में बराबर हिस्सा न देते थे। यहाँ तक कि रमेश से कुछ लोग जलने लगे। वह राजसी ठाट से रहता था। लोग कहते, "उसे हमारी कमाई को यों उड़ाने का क्या अधिकार है?" नतीजा यह हुआ कि आपस में फूट पड़ गई।

रात का वक्त था; काली घटा छाई हुई थी। आज डाकगाड़ी में डाका पड़ने वाला था। प्रोग्राम पहले से तैयार कर लिया गया था। पाँच साहसी युवक इस काम के लिए चुने गए थे।

सहसा एक युवक ने खड़े होकर कहा, "आप बार-बार मुझी को क्यों चुनते हैं? हिस्सा लेने वाले तो सभी हैं, मैं ही क्यों बार-बार अपनी जान जोखिम में डालूँ?"

रमेश ने दृढ़ता से कहा, "इसका निश्चय करना मेरा काम है कि कौन कहाँ भेजा जाए। तुम्हारा काम केवल मेरी आज्ञा का पालन है।"

युवक, "अगर मुझसे काम ज्यादा लिया जाता है तो हिस्सा क्यों नहीं ज्यादा दिया जाता?"

रमेश ने उसकी तयोरियाँ देखीं और चुपके से पिस्तौल हाथ में लेकर बोला, "इसका फैसला वहाँ से लौटने के बाद होगा।"

युवक, "मैं जाने से पहले इसका फेंसला करना चाहता हूँ।"

रमेश ने इसका जवाब न दिया। वह पिस्तौल से उसका काम-तमाम कर देना ही चाहता था कि युवक खिड़की से नीचे कूद पड़ा और भागा। कूदने-फाँदने में उसका जोड़ न था। चलती रेलगाड़ी से फाँद पड़ना उसके बाएँ हाथ का खेल था।

वह वहाँ से सीधा गुप्त पुलिस के प्रधान के पास पहुँचा।

यशवंत ने भी पेंशन लेकर वकालत शुरू की थी। न्याय-विभाग के सभी लोगों से उसकी मित्रता थी। उनकी वकालत बहुत जल्द चमक उठी। यशवंत के पास लाखों रुपए थे। उन्हें पेंशन भी बहुत मिलती थी। वह चाहते तो घर बैठे आनंद से अपनी उम्र के बाकी दिन काट देते। देश और जाति की कुछ सेवा करना भी उनके लिए मुश्किल न था। ऐसे ही पुरुषों से निस्स्वार्थ सेवा की आशा की जा सकती है। यशवंत ने अपनी सारी उम्र रुपए कमाने में गुजारी थी और वह अब कोई ऐसा काम न कर सकते थे, जिसका फल रुपयों की सूरत में न मिले।

यों तो सारा सभ्य समाज रमेश से घृणा करता था, लेकिन यशवंत सबसे बढ़ा हुआ था। कहता, अगर कभी रमेश पर मुकदमा चलेगा, तो मैं बिना फीस लिये सरकार की तरफ से पेंसरी करूँगा। खुल्लमखुल्ला रमेश पर छींटे उड़ाया करता, "यह आदमी नहीं, शैतान है, राक्षस है, ऐसे आदमी का तो मुँह न देखना चाहिए! उफ! इसके हाथों कितने भले घरों का सर्वनाश हो गया, कितने भले आदमियों के प्राण गए। कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गईं, कितने बालक अनाथ हो गए। आदमी नहीं, पिशाच है। मेरा बस चले, तो इसे गोली मार दूँ, जीता दीवार में चिनवा दूँ।"

सारे शहर में शोर मचा हुआ था, "रमेश बाबू पकड़े गए।" बात सच्ची थी। रमेश चुपचाप पकड़ा गया था। उसी युवक ने, जो रमेश के सामने कूदकर भागा था, पुलिस के प्रधान से सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया था। अपहरण और हत्या का कैसा रोमांचकारी, कैसा पैंशाचिक, कैसा पापपूर्ण वृत्तांत था।

भद्र समुदाय बगलें बजाता था। सेठों के घरों में घी के चिराग जलते थे। उनके सिर पर एक नंगी तलवार लटकती रहती थी, आज वह हट गई। अब वे मीठी नींद सो सकते थे।

अखबारों में रमेश के हथकंडे छपने लगे। वे बातें जो अब तक मारे भय के किसी की जबान पर न आती थीं, अब अखबारों में निकलने लगीं। उन्हें पढ़कर पता चला था कि रमेश ने कितना अंधेर मचा रखा था? कितने ही राजे और रईस उसे महावार टैंक्स दिया करते थे। उसका परचा पहुँचता, फलाँ तारीख को इतने रुपए भेज दो, फिर किसकी मजाल थी कि उसका हुक्म टाल सके। वह जनता के हित के लिए जो काम करता, उसके लिए भी अमीरों से चंदे लिए थे। रकम लिखना रमेश का काम था। अमीर को बिना कान-पूँछ हिलाए वह रकम दे देनी पड़ती थी।

लेकिन भद्र समुदाय जितना ही प्रसन्न था, जनता उतनी ही दुखी थी। अब कौन पुलिस वालों के अत्याचार से उनकी रक्षा करेगा? कौन सेठों के जुल्म से उन्हें बचाएगा, कौन उनके लड़कों के लिए कला-कौशल के मदरसे खोलेगा? वे अब किसके बल पर कूदेंगे? वह अब अनाथ थे। वही उनका अवलंब था। अब वे किसका मुँह ताकेंगे। किसको अपनी फरियाद सुनाएँगे?

पुलिस शहादतें जमा कर रही थी। सरकारी वकील जोरों से मुकदमा चलाने की तैयारियाँ कर रहा था। लेकिन रमेश की तरफ से कोई वकील न खड़ा होता था। जिले भर में एक ही आदमी था, जो उसे कानून के पंजे से छुड़ा सकता था। वह था यशवंत! लेकिन यशवंत जिसके नाम से कानों पर उँगली रखता था, क्या उसी की वकालत करने को खड़ा होगा? असंभव। रात के 9 बजे थे। यशवंत के कमरे में एक स्त्री ने प्रवेश किया। यशवंत अखबार पढ़ रहा था। बोला, "क्या चाहती हैं?"

स्त्री, "वही जो आपके साथ पढ़ता था और जिस पर डाके का झूठा अभियोग चलाया जाने वाला है।"

यशवंत ने चौंककर पूछा, "तुम रमेश की स्त्री हो?"

स्त्री, "हाँ।"

यशवंत, "मैं उनकी वकालत नहीं कर सकता।"

स्त्री, "आपको इस्तिyar हैं। आप अपने जिले के आदमी हैं और मेरे पति के मित्र रह चुके हैं, इसलिए सोचा था, क्यों बाहर वाले को बुलाऊँ, मगर अब इलाहाबाद या कलकत्ते से ही किसी को बुलाऊँगी।"

यशवंत, "मेहनताना दे सकोगी?"

स्त्री ने अभिमान के साथ कहा, "बड़े-से-बड़े वकील का मेहनताना क्या होता है?"

यशवंत, "तीन हजार रुपए रोज?"

स्त्री, "बस, आप इस मुकदमे को ले लें तो आपको तीन हजार रुपए रोज दूँगी।"

यशवंत, "तीन हजार रुपए रोज?"

स्त्री, "हाँ, और यदि आपने उन्हें छुड़ा लिया, तो पचास हजार रुपए आपको इनाम के तौर पर और दूँगी।"

यशवंत के मुँह में पानी भर आया। अगर मुकदमा दो महीने भी चला, तो कम-से-कम एक लाख रुपए सीधे हो जाएँगे। पुरस्कार ऊपर से, पूरे दो लाख की गोटी है। इतना धन तो जिंदगी भर जमा न कर पाए थे, मगर दुनिया क्या कहेगी? अपनी आत्मा भी तो नहीं

गवाही देती। ऐसे आदमी को कानून के पंजे से बचाना असंख्य प्राणियों की हत्या करना है। लेकिन गोटी दो लाख की है। रमेश के फँस जाने से इस जत्थे का अंत तो हुआ नहीं जाता। इसके चेले-चापड़ तो रहेंगे ही। शायद वे अब और भी उपद्रव मचाएँ। फिर मैं दो लाख की गोटी क्यों जाने दूँ? लेकिन मुझे कहीं मुँह दिखाने की जगह न रहेगी। न सही। जिसका जी चाहे खुश हो, जिसका चाहे नाराज। ये दो लाख नहीं छोड़े जाते। कुछ मैं किसी का गला तो दबाता नहीं, चोरी तो करता नहीं? अपराधियों की रक्षा करना तो मेरा काम ही है।"

सहसा स्त्री ने पूछा, "आप जवाब देते हैं?"

यशवंत, "मैं कल जवाब दूँगा। जरा सोच लूँ।"

स्त्री, "नहीं, मुझे इतनी फुरसत नहीं है। अगर आपको कुछ उलझन हो तो साफ-साफ कह दीजिएगा, मैं और प्रबंध करूँ।"

यशवंत को और विचार करने का अवसर न मिला। जल्दी से फँसला स्वार्थ ही की ओर झुकता है। यहाँ हानि की संभावना नहीं रहती।

यशवंत, "आप कुछ रुपए पेशगी के दे सकती हैं?"

स्त्री, "रुपयों की मुझसे बार-बार चर्चा न कीजिए। उनकी जान के सामने रुपयों की हस्ती क्या है? आप जितनी रकम चाहें, मुझसे ले लें। आप चाहे उन्हें छुड़ा न सकें, लेकिन सरकार के दाँत खट्टे जरूर कर दें।"

यशवंत, "खैर, मैं ही वकील हो जाऊँगा। कुछ पुरानी दोस्ती का निर्वाह भी तो करना चाहिए।"

पुलिस ने एडी-चोटी का जोर लगाया, सैकड़ों शहादतें पेश कीं। मुखबिर ने तो पूरी गाथा ही सुना दी; लेकिन यशवंत ने कुछ ऐसी दलीलें पेश कीं शहादतों को कुछ इस तरह झूठा सिद्ध किया और मुखबिर की कुछ ऐसी खबर ली कि रमेश बेदाग छूट गया। उन पर कोई अपराध सिद्ध न हो सका। यशवंत जैसे संयत और विचारशील वकील का उनके पक्ष में खड़े हो जाना ही इसका प्रमाण था कि सरकार ने गलती की।

संध्या का समय था। रमेश के द्वार पर शामियाना तना हुआ था। गरीबों को भोजन कराया जा रहा था। मित्रों की दावत हो रही थी। यह रमेश के छूटने का उत्सव था। यशवंत को चारों ओर से धन्यवाद मिल रहे थे। रमेश को बधाइयाँ दी जा रही थीं। यशवंत बार-बार रमेश से बोलना चाहता था, लेकिन रमेश उसकी ओर से मुँह फेर लेता था। अब तक उन दोनों में एक बात भी न हुई थी।

आखिर यशवंत ने एक बार झुँझलाकर कहा, "तुम तो मुझसे इस तरह ऐंठे हुए हो, मानो मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई की है।"

रमेश, "और आप क्या समझते हैं कि मेरे साथ भलाई की है? पहले आपने मेरे इस लोक का सर्वनाश किया, अबकी परलोक का किया। पहले न्याय किया होता तो मेरी जिंदगी सुधर जाती और अब जेल जाने देते, तो आकबत बन जाती।"

यशवंत, "यह तो कहोगे कि इस मामले में कितने साहस से काम लेना पड़ा?"



जुगनू की चमक

पंजाब के सिंह राजा रणजीत सिंह संसार से चल चुके थे और राज्य के वे प्रतिष्ठित पुरुष, जिनके द्वारा उनका उत्तम प्रबंध चल रहा था, परस्पर के द्वेष और अनबन के कारण मर मिटे थे। राणा रणजीत सिंह का बनाया हुआ सुंदर किंतु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। कुँवर दिलीप सिंह अब इंग्लैंड में थे और रानी चंद्रकुंवरि चुनार के दुर्ग में। रानी चंद्रकुंवरि ने विनष्ट होते हुए राज्य को बहुत संभालना चाहा किंतु शासन-प्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्ष्या की आग भड़काने के सिवा और क्या करती?

रात के बारह बज चुके थे। रानी चंद्रकुंवरि अपने निवास-भवन के ऊपर छत पर खड़ी गंगा की ओर देख रही थी और सोचती थी, "लहरें क्यों इस प्रकार स्वतंत्र हैं? उन्होंने कितने गाँव और नगर डुबोए हैं, कितने जीव-जंतु तथा द्रव्य निगल गई हैं, किंतु फिर भी वे स्वतंत्र हैं। कोई उन्हें बंद नहीं करता। इसीलिए न कि वे बंद नहीं रह सकती? वे गरजेगी, बल खाएँगी और बाँध के ऊपर चढ़कर उसे नष्ट कर देंगी, अपने जोर से उसे बहा ले जाएँगी।"

यह सोचते-सोचते रानी गाढ़ी (गद्दी) पर लेट गई, उसकी आँखों के सामने पूर्वावस्था की स्मृतियाँ मनोहर स्वप्न की भाँति आने लगीं। कभी उसकी भाँह की मरोड़ तलवार से भी अधिक तीव्र थी और उसकी मुसकराहट वसंत की सुगंधित समीर से भी अधिक प्राण-पोषक, किंतु हाय! अब इनकी शक्ति हीनावस्था को पहुँच गई। रोए तो अपने को सुनाने के लिए, हँसे तो अपने को बहलाने के लिए। यदि बिगड़े तो किसी का क्या बिगाड़ सकती हैं और प्रसन्न हो तो किसी का क्या बना सकती हैं? रानी और बाँदी में कितना अंतर है? रानी की आँखों से आँसू की बूँदें झरने लगीं, जो कभी विष से अधिक प्राणनाशक और अमृत से अधिक अनमोल थीं। वह इसी भाँति अकेली, निराश, कितनी बार रोई, जबकि आकांक्ष के तारों के सिवा और कोई देखने वाला न था।

इसी प्रकार रोते-रोते रानी की आँखें लग गईं। उसका प्यारा, कलेजे का टुकड़ा, कुँवर दिलीप सिंह, जिसमें उसके प्राण बसते थे, उदास मुख आकर खड़ा हो गया। जैसे गाय दिन भर जंगलों में रहने के पश्चात् संध्या को घर आती है और अपने बछड़े को देखते ही प्रेम और उमंग से मतवाली होकर स्तनों में दूध भरे, पूँछ उठाए दौड़ती है, उसी भाँति चंद्रकुंवरि अपने

दोनों हाथ फैलाए कुँवर को छाती से लिपटाने के लिए दौड़ी। परंतु आँखें खुल गईं और जीवन की आशाओं की भाँति वह स्वप्न विनष्ट हो गया। रानी ने गंगा की ओर देखा और कहा, "मुझे भी अपने साथ लेती चलो।" इसके बाद रानी तुरंत छत से उतरी। कमरे में लालटेन जल रही थी। उसके उजाले में उसने एक मैली साड़ी पहनी, गहने उतार दिए, रत्नों के एक छोटे से बक्से को और एक तीव्र कटार को कमर में रखा। जिस समय वह बाहर निकली, नैराश्यपूर्ण साहस की मूर्ति थी।

संतरी ने पुकारा, "कौन?"

रानी ने उत्तर दिया, "मैं हूँ झंगी।"

"कहाँ जाती है?"

"गंगाजल लाऊँगी। सुराही टूट गई है, रानी जी पानी माँग रही हैं।"

संतरी कुछ समीप आकर बोला, "चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ, जरा रुक जा।"

झंगी बोली, "मेरे साथ मत आओ। रानी कोठे पर हैं, देख लेंगी।"

संतरी को धोखा देकर चंद्रकुँवरि गुप्त द्वार से होती हुई अँधेरे में काँटों से उलझती, चट्टानों से टकराती गंगा के किनारे पर जा पहुँची।

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। गंगाजी में संतोषदायिनी शांति विराज रही थी। तरंगों तारों को गोद में लिये सो रही थीं। चारों ओर सन्नाटा था। रानी नदी के किनारे-किनारे चली जाती थी और मुड़-मुड़कर पीछे देखती थी। एकाएक एक डोंगी खूँटे से बँधी हुई दिखाई पड़ी। रानी ने उसे ध्यान से देखा तो मल्लाह सोया हुआ था। उसे जगाना काल को जगाना था। वह तुरंत रस्सी खोलकर नाव पर सवार हो गई। नाव धीरे-धीरे धार के सहारे चलने लगी, शोक और अंधकारमय स्वप्न की भाँति, जो ध्यान को तरंगों के साथ बहाता चला जाता हो। नाव के हिलने से मल्लाह चौंककर उठ बैठा। आँखें मलते-मलते उसने सामने देखा तो पटरे पर एक स्त्री हाथ में डाँडा लिये बैठी है। घबराकर पूछा, "तू कौन है रे? नाव कहाँ लिये जाती है?"

रानी हँस पड़ी। भय के अंत को साहस कहते हैं। बोली, "सच बताऊँ या झूठ?"

मल्लाह कुछ भयभीत सा होकर बोला, "सच बताया जाए।"

रानी बोली, "अच्छा तो सुनो। मैं लाहौर की रानी चंद्रकुँवरि हूँ। इसी किले में कैदी थी। आज भागी जाती हूँ। मुझे जल्दी बनारस पहुँचा दे, तुझे निहाल कर दूँगी और शरारत करेगा तो देख, कटार से सिर काट दूँगी। सवेरा होने से पहले मुझे बनारस पहुँचना चाहिए।"

यह धमकी काम कर गई। मल्लाह ने विनीत भाव से अपना कंबल बिछा दिया और तेजी से डाँड चलाने लगा। किनारे के वृक्ष और ऊपर जगमगाते हुए तारे साथ-साथ दौड़ने लगे।

प्रातःकाल चुनार के दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य अचंभित और व्याकुल था। संतरी, चौकीदार और लौडियाँ सब सिर नीचे किए दुर्ग के स्वामी के सामने उपस्थित थे। अन्वेषण हो रहा था, परंतु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुँची, परंतु वहाँ पहले से ही पुलिस और सेना का जाल बिछा हुआ था, नगर के नाके बंद थे। रानी का पता लगाने वाले के लिए एक महामूल्य पारितोषिक की सूचना दी गई थी।

बंदीगृह से निकलकर रानी को ज्ञात हो गया कि वह और दृढ़ कारागार में है। दुर्ग में प्रत्येक मनुष्य उसका आज्ञाकारी था, दुर्ग का स्वामी भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था, किंतु आज स्वतंत्र होकर भी उसके हाँठ बंद थे। उसे सभी स्थानों में शत्रु दीख पड़ते थे। पंखरहित पक्षी को पिंजरे के कोने में ही सुख है।

पुलिस के अफसर प्रत्येक आने-जाने वालों को ध्यान से देखते थे किंतु उस भिखारिन की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था, जो एक फटी हुई साड़ी पहने, यात्रियों के पीछे-पीछे, धीरे-धीरे सिर झुकाए गंगा की ओर चली आ रही थी। न वह चौंकती है, न हिचकती है, न घबराती है। इस भिखारिन की नसों में रानी का रक्त है।

यहाँ से भिखारिन ने अयोध्या की राह ली। वह दिन भर विकट मार्गों से चलती और रात को किसी सुनसान स्थान पर लेट जाती थी। मुख पीला पड़ गया था। पैरों में छाले थे। फूल सा बदन कुम्हला गया था।

वह प्रायः गाँवों में लाहौर की रानी के चरचे सुनती। कभी-कभी पुलिस के आदमी भी उसे रानी की टोह में दत्तचित्त दीख पड़ते। उन्हें देखते ही भिखारिनी के हृदय में सोई हुई रानी जाग उठती। वह आँखें उठाकर उन्हें घृणा-दृष्टि से देखती और शोक तथा क्रोध से उसकी आँखें जलने लगतीं। एक दिन अयोध्या के समीप पहुँचकर रानी एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी। उसने कमर से कटार निकालकर सामने रख दी थी। वह सोच रही थी कि कहाँ जाऊँ? मेरी यात्रा का अंत कहाँ है? क्या इस संसार में अब मेरे लिए कहीं ठिकाना नहीं है? वहाँ से थोड़ी दूर पर आमों का एक बहुत बड़ा बाग था। उसमें बड़े-बड़े डेरे और तंबू गड़े हुए थे। कई संतरी चमकीली वरदियाँ पहने टहल रहे थे, कई घोड़े बँधे हुए थे।

रानी ने इस राजसी ठाट-बाट को शोक की दृष्टि से देखा। एक बार वह भी कभी कश्मीर गई थी। उसका पड़ाव इससे कहीं बड़ा था।

बैठे-बैठे संध्या हो गई। रानी ने वहीं रात काटने का निश्चय किया। इतने में एक बूढ़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप खड़ा हो गया। ऐंठी हुई दाढ़ी थी, शरीर में सटी हुई अचकन थी, कमर में तलवार लटक रही थी। इस मनुष्य को देखते ही रानी ने तुरंत कटार उठाकर कमर में खोस ली। सिपाही ने उसे तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा, "बेटी, कहाँ से आई हो?"

रानी ने कहा, "बहुत दूर से।"

"कहाँ जाओगी?"

"यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।"

बैठे-बैठे संध्या हो गई। रानी ने वहीं रात काटने का निश्चय किया। इतने में एक बूढ़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप खड़ा हो गया। ऐंठी हुई दाढ़ी थी, शरीर में सटी हुई अचकन थी, कमर में तलवार लटक रही थी। इस मनुष्य को देखते ही रानी ने तुरंत कटार उठाकर कमर में खोंस ली। सिपाही ने उसे तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा, "बेटी, कहाँ से आई हो?"

रानी ने कहा, "बहुत दूर से।"

"कहाँ जाओगी?"

"यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।"

सिपाही ने रानी की ओर फिर ध्यान से देखा और कहा, "जरा अपनी कटार दिखाओ।" रानी कटार सँभालकर खड़ी हो गई और तीव्र स्वर में बोली, "मित्र हो या शत्रु?" सिपाही ने कहा, "मित्र।" सिपाही के बातचीत करने के ढंग में और चेहरे में कुछ ऐसी विलक्षणता थी, जिससे रानी को विवश होकर विश्वास करना पड़ा।

वह बोली, "विश्वासघात न करना। यह देखो।"

सिपाही ने कटार हाथ में ली। उसको उलट-पुलटकर देखा और बड़े नम्र भाव से उसे आँखों से लगाया। तब रानी के आगे विनीत भाव से सिर झुकाकर वह बोला, "महारानी चंद्रकुँवरि?"

रानी ने करुण स्वर में कहा, "नहीं, अनाथ भिखारिनी। तुम कौन हो?" सिपाही ने उत्तर दिया, "आपका एक सेवक।"

रानी ने उसकी ओर निराश दृष्टि से देखा और कहा, "दुर्भाग्य के सिवा इस संसार में मेरा कोई नहीं।"

सिपाही ने कहा, "महारानीजी, ऐसा न कहिए। पंजाब के सिंह की महारानी के वचन पर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं। देश में ऐसे लोग विद्यमान हैं, जिन्होंने आपका नमक खाया है और उसे भूलें नहीं हैं।"

रानी, "अब इसकी इच्छा नहीं। केवल एक शांत स्थान चाहती हूँ, जहाँ पर एक कुटी के सिवा कुछ न हो।"

सिपाही, "ऐसा स्थान पहाड़ों में ही मिल सकता है। हिमालय की गोद में चलिए, वहीं आप उपद्रव से बच सकती हैं।"

रानी, "(आश्चर्य से) शत्रुओं में जाऊँ? नेपाल कब हमारा मित्र रहा है?" सिपाही, "राणा जंगबहादुर दृढ़प्रतिज्ञ राजपूत हैं।"

रानी, "किंतु वही जंगबहादुर तो हैं, जो अभी-अभी हमारे विरुद्ध लॉर्ड डलहौजी को सहायता देने पर उद्यत था?"

सिपाही (कुछ लज्जित सा होकर), "तब आप महारानी चंद्रकुँवरि थीं, आज आप भिखारिन हैं। ऐश्वर्य के द्वेषी और शत्रु चारों ओर होते हैं। लोग जलती हुई आग को पानी से बुझाते हैं, पर राख माथे पर लगाई जाती है। आप जरा भी सोच-विचार न करें, नेपाल में अभी धर्म का लोप नहीं हुआ है। आप भय-त्याग करें, हिमालय की ओर चलें। देखिए, वह आपको किस भाँति सिर और आँखों पर बिठाता है?"

रानी ने रात इसी वृक्ष की छाया में काटी। सिपाही भी वहीं सोया। प्रातःकाल वहाँ दो तीव्रगामी घोड़े दिखाई पड़े। एक पर सिपाही सवार था और दूसरे पर एक अत्यंत रूपवान युवक। यह रानी चंद्रकुँवरि थी, जो अपने रक्षास्थान की खोज में नेपाल जाती थी। कुछ देर बाद रानी ने पूछा, "यह पड़ाव किसका है?"

सिपाही ने कहा, "राणा जंगबहादुर का। वे तीर्थयात्र करने आए हैं, किंतु हमसे पहले पहुँच जाएँगे।"

रानी, "तुमने उनसे मुझे यहीं क्यों न मिला दिया? उनका हार्दिक भाव प्रकट हो जाता।"

सिपाही, "यहाँ उनसे मिलना असंभव है। आप जासूसों की दृष्टि से न बच सकती।"

उस समय यात्रा करना प्राण को अर्पण कर देना था। दोनों यात्रियों को अनेकों बार डाकुओं का सामना करना पड़ा। उस समय रानी की वीरता, उसका युद्ध-कौशल तथा फुरती देखकर बूढ़ा सिपाही दाँतों तले उँगुली दबाता था। कभी उनकी तलवार काम कर जाती और कभी घोड़े की तेज चाल।



यात्र बड़ी लंबी थी। जेठ का महीना मार्ग में ही समाप्त हो गया। वर्षा दृप्त आई। आकाश में मेघ-माला छाने लगी। सूखी नदियाँ उतर चलीं। पहाड़ी नाले गरजने लगे। न नदियों में नाव, न नालों पर घाट; किंतु घोड़े सधे हुए थे। स्वयं पानी में उतर जाते और डूबते-उतराते, बहते, भँवर खाते पार पहुँच जाते। एक बार बिच्छू ने कछुए की पीठ पर नदी की यात्र की थी। यह यात्र उससे कम भयानक न थी।

कहीं ऊँचे-ऊँचे साखू और मुहुए के जंगल थे और कहीं हरे-भरे जामुन के वन। उनकी गोद में हाथियों और हिरणों के झुंड किलोलें कर रहे थे। धन की क्यारियाँ पानी से भरी हुई थीं। किसानों की स्त्रियाँ धन रोपती थीं और सुहावने गीत गाती थीं। कहीं उन मनोहारी ध्वनियों के बीच में, खेत की मेंड़ों पर छाते की छाया में बैठे हुए जमींदारों के कठोर शब्द सुनाई देते थे।

इसी प्रकार यात्र के कष्ट सहते, अनेकानेक विचित्र दृश्य देखते दोनों यात्री तराई पार करके नेपाल की भूमि में प्रविष्ट हुए।

प्रातःकाल का सुहावना समय था। नेपाल के महाराज सुरेंद्र विक्रम सिंह का दरबार सजा हुआ था। राज्य के प्रतिष्ठित मंत्री अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। नेपाल ने एक बड़ी लड़ाई के पश्चात् तिब्बत पर विजय पाई थी। इस समय संधि की शर्तों पर विवाद छिड़ा था। कोई युद्ध-व्यय का इच्छुक था, कोई राज्य-विस्तार का। कोई-कोई महाशय वार्षिक कर पर जोर दे रहे थे। केवल राणा जंगबहादुर के आने की देर थी। वे कई महीनों के देशाटन के पश्चात् आज ही रात को लौटे थे और यह प्रसंग, जो उन्हीं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था, अब मंत्रि-सभा में उपस्थित किया गया था। तिब्बत के यात्री आशा और भय की दशा में, प्रधानमंत्री के मुख से अंतिम निर्णय सुनने को उत्सुक हो रहे थे। नियत समय पर चोबदार ने राणा के आगमन की सूचना दी। दरबार के लोग उन्हें सम्मान देने के लिए खड़े हो गए। महाराज को प्रणाम करने के पश्चात् वे अपने सुसज्जित आसन पर बैठ गए। महाराज ने कहा, "राणाजी, आप संधि के लिए कौन सा प्रस्ताव करना चाहते थे?"

राणा ने नम्र भाव से कहा, "मेरी अल्प-बुद्धि में तो इस समय कठोरता का व्यवहार करना अनुचित है। शोकाकुल शत्रु के साथ दयालुता का आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसर पर स्वार्थ के मोह में हम अपने बहुमूल्य उद्देश्य को भूल जाएंगे? हम ऐसी संधि चाहते हैं, जो हमारे हृदयों को एक कर दे। यदि तिब्बत का दरबार हमें व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करने को कटिबद्ध हो तो हम संधि करने के लिए सर्वथा उद्यत हैं।"

मंत्रिमंडल में विवाद आरंभ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुता के अनुसार न थी, किंतु महाराज ने राणा का समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्यों को शत्रु के साथ ऐसी नरमी पसंद न थी, तथापि महाराज के विपक्ष में बोलने का किसी को साहस न हुआ।

यात्रियों के चले जाने के पश्चात् राणा जंगबहादुर ने खड़े होकर कहा, "सभा में उपस्थित सज्जनो, आज नेपाल के इतिहास में एक नई घटना होने वाली है, जिसे मैं आपकी जातीय

नीतिमत्ता की परीक्षा समझता हूँ, इसमें सफल होना आपके ही कर्तव्य पर निर्भर है। आज राज-सभा में आते समय मुझे यह आवेदन-पत्र मिला है, जिसे मैं आप सज्जनों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। निवेदक ने तुलसीदास की यह चौपाई लिख दी है-

आपत-काल परखिए चारी।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।"

महाराज ने पूछा, "यह पत्र किसने भेजा है?"

"एक भिखारिन ने।"

"भिखारिन कौन है?"

"महारानी चंद्रकुंवरि।"

कड़बड़ खत्री ने आश्चर्य से पूछा, "जो हमारी मित्र अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध होकर भाग आई है?"

राणा जंगबहादुर ने लज्जित होकर कहा, "जी हाँ। यद्यपि हम इसी विचार को दूसरे शब्दों में प्रकट कर सकते हैं।"

कड़बड़ खत्री, "अंग्रेजों से हमारी मित्रता है और मित्र के शत्रु की सहायता करना मित्रता की नीति के विरुद्ध है।"

जनरल शमशेर बहादुर, "ऐसी दशा में इस बात का भय है कि अंग्रेजी सरकार से हमारे संबंध टूट न जाएँ।"

राजकुमार रणवीर सिंह, "हम यह मानते हैं कि अतिथि-सत्कार हमारा धर्म है, किंतु उसी समय तक, जब तक कि हमारे मित्रों को हमारी ओर से शंका करने का अवसर न मिले!"

इस प्रसंग पर यहाँ तक मतभेद तथा वाद-विवाद हुआ कि एक शोर सा मच गया और कई प्रधान यह कहते हुए सुनाई दिए कि महारानी का इस समय आना देश के लिए कदापि मंगलकारी नहीं हो सकता।

तब राणा जंगबहादुर उठे। उनका मुख लाल हो गया था। उनका सद्विचार क्रोध पर अधिकार जमाने के लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। वे बोले, "भाइयो, यदि इस समय मेरी बातें आप लोगों को अत्यंत कड़ी जान पड़ें तो मुझे क्षमा कीजिएगा, क्योंकि अब मुझमें अधिक श्रवण करने की शक्ति नहीं है। अपनी जातीय साहसहीनता का यह लज्जाजनक दृश्य अब मुझसे नहीं देखा जाता। यदि नेपाल के दरबार में इतना भी साहस नहीं कि वह अतिथि-सत्कार और सहायता की नीति को निभा सके तो मैं इस घटना के संबंध में सब प्रकार का भार अपने ऊपर लेता हूँ। दरबार अपने को इस विषय में निर्दोष समझे और इसकी सर्वसाधारण में घोषणा कर दे।"

कड़बड़ खत्री गरम होकर बोले, "केवल यह घोषणा देश को भय से रहित नहीं कर सकती।"

राणा जंगबहादुर ने क्रोध से होंठ चबा लिया, किंतु सँभलकर कहा, "देश का शासन-भार अपने ऊपर लेने वालों की ऐसी अवस्थाएँ अनिवार्य हैं। हम उन नियमों से, जिन्हें पालन करना हमारा कर्तव्य है, मुँह नहीं मोड़ सकते। अपनी शरण में आए हुए का हाथ पकड़ना, उनकी रक्षा करना राजपूतों का धर्म है। हमारे पूर्व-पुरुष सदा इस नियम पर-धर्म पर प्राण देने को उद्यत रहते थे। अपने माने हुए धर्म को तोड़ना एक स्वतंत्र जाति के लिए लज्जास्पद है। अंग्रेज हमारे मित्र हैं और अत्यंत हर्ष का विषय है कि बुद्धिशाली मित्र हैं। महारानी चंद्रकुँवरि को अपनी दृष्टि में रखने से उनका उद्देश्य केवल यह था कि उपद्रवी लोगों के गिरोह का कोई केंद्र शेष न रहे। यदि उनका यह उद्देश्य भंग न हो, तो हमारी ओर से शंका न होने का न उन्हें कोई अवसर है और न हमें उनसे लज्जित होने की कोई आवश्यकता।"

कड़बड़ खत्री, "महारानी चंद्रकुँवरि यहाँ किस प्रयोजन से आई हैं?"

राणा जंगबहादुर, "केवल एक शांतिप्रिय सुख-स्थान की खोज में, जहाँ उन्हें अपनी दुरवस्था की चिंता से मुक्त होने का अवसर मिले। वह ऐश्वर्यशाली रानी जो रंगमहलों में सुख-विलास करती थी, जिसे फूलों की सेज पर भी चैन न मिलता था, आज सैकड़ों कोस से अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती, नदी-नाले, पहाड़-जंगल छानती यहाँ केवल एक रक्षित स्थान की खोज में आई हैं। उमड़ी हुई नदियों और उबलते हुए नाले, बरसात के दिन, इन दुखों को आप लोग जानते हैं और यह सब उसी एक रक्षित स्थान के लिए, उसी एक भूमि के टुकड़े की आशा में। किंतु हम ऐसे हृदयहीन हैं कि उनकी यह अभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकते। उचित तो यह था कि उतनी-सी भूमि के बदले हम अपना हृदय फैला देते। सोचिए, कितने अभिमान की बात है कि एक आपदा में फँसी हुई रानी अपने दुःख के दिनों में जिस देश को याद करती है, यह वही पवित्र देश है। महारानी चंद्रकुँवरि को हमारे इस अभयप्रद स्थान पर, "हमारी शरणागतों की रक्षा का पूरा भरोसा था और वही विश्वास

उन्हें यहाँ तक लाया है। इसी आशा पर कि पशुपतिनाथ की शरण में मुझे शांति मिलेगी, वह यहाँ तक आई हैं। आपको अधिकार है, चाहे उनकी आशा पूर्ण करें या धूल में मिला दें। चाहे रक्षणता के, शरणागतों के साथ सदाचरण के नियमों को निभाकर इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम छोड़ जाएँ, या जातीयता तथा सदाचार-संबंधी नियमों को मिटाकर स्वयं अपने को पतित समझें। मुझे विश्वास नहीं है कि यहाँ एक भी मनुष्य ऐसा निराभिमान है कि जो इस अवसर पर शरणागत-पालनधर्म को विस्तृत करके अपना सिर ऊँचा कर सके। अब मैं आपसे अंतिम निपटारे की प्रतीक्षा करता हूँ। कहिए, आप अपनी जाति और देश का नाम उज्ज्वल करेंगे या सर्वदा के लिए अपने माथे पर अपयश का टीका लगाएँगे?"

राजकुमार ने उमंग में कहा, "हम महारानी के चरणों तले आँखें बिछाएँगे।"

कप्तान रणवीर सिंह, "हम उनको ऐसी धूम से लाएँगे कि संसार चकित हो जाएगा।"

राणा जंगबहादुर ने कहा, "मैं अपने मित्र कड़बड़ खत्री के मुख से उसका फैसला सुनना

चाहता हूँ।"

कड़बड़ खत्री एक प्रभावशाली पुरुष थे और मंत्रिमंडल में वे राणा जंगबहादुर के विरुद्ध मंडली के प्रधान थे। वे लज्जा भरे शब्दों में बोले, "यद्यपि मैं महारानी के आगमन को भयरहित नहीं समझता, किंतु इस अवसर पर हमारा धर्म यही है कि हम महारानी को आश्रय दें। धर्म से मुँह मोड़ना किसी जाति के लिए मान का कारण नहीं हो सकता।"

कई ध्वनियों ने उमंग भरे शब्दों में इस प्रसंग का समर्थन किया। महाराज सुरेंद्र विक्रम सिंह, "इस निपटारे पर बधाई देता हूँ। तुमने जाति का नाम रख लिया। पशुपति इस उत्तम कार्य में तुम्हारी सहायता करें।"

सभा विसर्जित हुई। दुर्ग से तोपें छूटने लगीं। नगर-भर में खबर गूँज उठी कि पंजाब की रानी चंद्रकुँवरि का शुभागमन हुआ है। जनरल रणवीर सिंह और जनरल रणधीर सिंह बहादुर पचास हजार सेना के साथ महारानी की अगवानी के लिए चले।

अतिथि-भवन की सजावट होने लगी। बाजार अनेक भाँति की उत्तम सामग्रियों से सज गए।

ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा व सम्मान सब कहीं होता है, किंतु किसी ने भिखारिनी का ऐसा सम्मान देखा है? सेनाएँ बैँड बजाती और पताका फहराती हुई एक उमड़ी नदी की भाँति जाती थीं। सारे नगर में आनंद-ही-आनंद था। दोनों ओर सुंदर वस्त्रभूषणों से सजे दर्शकों का समूह खड़ा था। सेना के कमांडर आगे-आगे घोड़ों पर सवार थे। सबके आगे राणा जंगबहादुर जातीय अभिमान के मद में लीन, अपने सुवर्णखचित होंदे में बैठे हुए थे। यह उदारता का एक पवित्र दृश्य था। धर्मशाला के द्वार पर यह जुलूस रुका। राणा हाथी से उतरे। महारानी चंद्रकुँवरि कोठरी से बाहर निकल आईं। राणा ने झुककर वंदना की। रानी उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगीं। यह वही उनका मित्र बूढ़ा सिपाही था।

आँखें भर आईं, मुसकराईं, खिले हुए फूल पर से ओस की बूँदें टपकीं। रानी बोली, "मेरे बूढ़े ठाकुर, मेरी नाव पार लगाने वाले, किस भाँति तुम्हारा गुण गाऊँ?"

राणा ने सिर झुकाकर कहा, "आपके चरणाविंद से हमारे भाग्य उदय हो गए।"

नेपाल की राजसभा ने पच्चीस हजार रुपए से महारानी के लिए एक उत्तम भवन बनवा दिया और उनके लिए दस हजार रुपए मासिक नियत कर दिए।

वह भवन आज तक वर्तमान है और नेपाल की शरणागतप्रियता तथा प्रणपालन-तत्परता का स्मारक है। पंजाब की रानी को लोग आज तक याद करते हैं।

यह वह सीढ़ी है जिससे जातियाँ, यश के सुनहरे शिखर पर पहुँचती हैं। ये ही घटनाएँ हैं, जिनसे जातीय इतिहास प्रकाश और महत्त्व को प्राप्त होता है।



सुजान भगत

सीधे-सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भाँति वह पहले अपने भोग-विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चंद्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छीट आता तो कुछ-न-कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ईश्वर लगती गई। उधर गुड़ का भाव तेज था। कोई दो-ढाई हजार हाथ में आ गए, बस चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु-संतों का आदर-सत्कार होने लगा, द्वार पर धुनी जलने लगी, कानूनगो इलाके में आते तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते। हलकें के हैंड कांस्टेबिल, थानेदार, शिक्षा-विभाग का अफसर, एक-न-एक उस चौपाल में पड़ा रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग! उसके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं, जिन हाकिमों के सामने उसका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब 'महतो-महतो' करते जबान सुखती थी। कभी-कभी भजन-भाव हो जाता। एक महात्मा ने डोल अच्छा देखा तो गाँव में आसन जमा दिया। गाँव और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आई, मंजीरे मँगाए गए, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जलूस था।

घर में सेरों दूध होता था, मगर सुजान के कंठ तले एक बूँद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग। किसान को दूध-घी से क्या मतलब? उसे रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब पारावार न था। सबके सामने सिर झुकाए रहता, कहीं लोग यह न कहने लगें कि धन पाकर उसे घमंड हो गया। गाँव में कुल तीन कुएँ थे, बहुत से खेतों में पानी न पहुँचता था, खेती मारी जाती थी। सुजान ने पक्का कुआँ बनवा दिया। कुएँ का विवाह हुआ, यज्ञ हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन पहली बार पुर चला, सुजान को मानो चारों पदार्थ मिल गए। जो काम गाँव में किसी ने न किया था, वह बाप-दादा के पुण्य-प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाँव में गया के यात्री आकर ठहरे। सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना। सुजान के मन में भी गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया। उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा, "अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।"

सुजान ने गंभीर भाव से कहा, "अगले साल क्या होगा, कौन जानता है? धर्म के काम में मीन-मेख निकालना अच्छा नहीं, जिंदगी का क्या भरोसा?"

बुलाकी, "हाथ खाली हो जाएगा।"

सुजान, "भगवान् की इच्छा होगी तो फिर रुपए हो जाएँगे। उनके यहाँ किस बात की कमी है?"

बुलाकी इसका क्या जवाब देती? सत्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहाँ से लौटते तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी बिरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गाँवों में सुपारी बँटी। इस धूमधाम से यह लाभ हुआ कि चारों ओर वाह-वाह मच गई। सब यही कहते थे कि भगवान् धन दे तो दिल भी ऐसा दे। घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो तो ऐसा हो। बाप मरा तो भूनी-भाँग भी नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोड़कर आ बैठी है।

एक द्वेषी ने कहा, "कहीं गड़ा हुआ धन पास आ गया है।"

इस पर चारों ओर से उस पर बाँछारें पड़ने लगीं, "हाँ, तुम्हारे बाप-दादा जो खजाना छोड़ गए थे, वही उसके हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छाती फाड़कर काम करते हो, क्यों ऐसी ईख नहीं लगती? क्यों ऐसी फसल नहीं होती? भगवान् आदमी का दिल देखते हैं। जो खर्च करता है, उसी को देते हैं।"

सुजान महतो सुजान भगत हो गए। भगतों के आचार-विचार कुछ और होते हैं, वह बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन-भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चना उसके लिए अनिवार्य है। खान-पान में भी उसे बहुत विचार करना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि झूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत झूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर झूठ का दंड एक मिले तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध क्षम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिए क्षमा नहीं है, प्रायश्चित्त नहीं है, यदि है तो बहुत कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। उसका कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ तक मार्ग काँटों से भरा हुआ था। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था, इसी काँटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के काँटों पर तौलने लगा। यों कहो कि जड़-जगत से निकलकर उसने चेतन-जगत में प्रवेश किया। उसने कुछ लेने-देने करना शुरू किया था। अब उसे ब्याज लेते हुए आत्मग्लानि-सी होती थी। यहाँ तक कि गउओं को दुहते समय उसे बछड़ों का ध्यान बना रहता था। कहीं बछड़ा भूखा न रह जाए, नहीं तो उसका रोयाँ दुखी होगा। वह गाँव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में उसने झूठी शहादतें बनवाई थीं, कितनों से डाँड लेकर मामले को रफा-दफा

करा दिया था। अब इन व्यापारों से उसे घृणा होती थी। झूठ और प्रपंच से कोसों दूर भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरों से जितना काम लिया जा सके, लो और मजूरी जितनी कम दी जा सके, दो, पर अब उसे मजूर के काम की कम, मजूरी की अधिक चिंता रहती थी, कहीं बेचारे मजूर का रोयाँ दुःखी हो जाए। उसके दोनों जवान बेटे बात-बात में उस पर फट्टियाँ कसते, यहाँ तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी थी, जिसे घर के भले-बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन-जगत में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गए।

सुजान के हाथों से धीरे-धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको क्या देना है, किससे क्या लेना है, किस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी-ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों में भी भगतजी की सलाह न ली जाती थी। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला तय कर लिया करती। गाँव भर में सुजान का मान-सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के उसका सत्कार अब बहुत करते। हाथ से चारपाई उठाते देख लपककर खुद उठा लाते, चिलम न भरने देते, यहाँ तक कि उसकी धोती छाँटने के लिए भी आग्रह करते थे, मगर अधिकार उसके हाथ में न था। वह अब घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देवता था।

एक दिन बुलाकी ओखली में ढाल छाँट रही थी। एक भिखमंगा द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा, ढाल छाँट लूँ तो उसे कुछ दे दूँ। इतने में बड़ा लड़का भोला आकर बोला, "अम्मा, एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं? कुछ दे दो, नहीं तो उनका रोयाँ दुःखी हो जाएगा।"

बुलाकी ने उपेक्षा के भाव से कहा, "भगत के पाँव में क्या मेहँदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं देते? क्या मेरे चार हाथ हैं? किस-किस का रोयाँ सुखी करूँ? दिन भर तो ताँता लगा रहता है।"

भोला, "चौपट करने पर लगे हुए हैं, क्यों क्या? अभी महगू बेंग (रुपए) देने आया था। हिसाब से 7 मन हुआ। तोला तो पौने सात मन ही निकले।"

मैंने कहा, "दस सेर और ला, तो आप बैठे-बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहाँ जाएगा। भरपाई लिख दो, नहीं तो उसका रोयाँ दुःखी होगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी। दस सेर बाकी लिख दी।"

बुलाकी, "बहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो। दस-पाँच दफे मुँह की खा जाएँगे, तो आप ही बोलना छोड़ देंगे।"

भोला, "दिन भर एक-न-एक खुचड़ निकालते हैं। सौ दफे कह दिया कि तुम घर-गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।"

बुलाकी, "मैं जानती थी कि इनका यह हाल होगा तो गुरुमंत्र न लेने देती।"

भोला, "भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया दोनों से गए। सारा दिन पूजा-पाठ में उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गए कि कोई काम ही न कर सकें।"

बुलाकी ने आपत्ति की, "भोला, यह तुम्हारा कुन्याय है। फावड़ा, कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ-न-कुछ तो करते ही रहते हैं। बैलों को सानी-पानी देते हैं, गाय दुहते हैं, और भी जो कुछ हो सकता है, करते हैं।"

भिक्षुक अभी तक खड़ा चिल्ला रहा था। सुजान ने जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अंदर गया और कठोर स्वर में बोला, "तुम लोगों को कुछ सुनाई नहीं देता कि द्वार पर कौन घंटे भर से खड़ा भीख माँग रहा है? अपना काम तो दिन भर करना ही है, एक क्षण भगवान् का काम भी तो किया करो।"

बुलाकी, "'तुम तो भगवान् का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर-भर भगवान् ही का काम करेगा?"

सुजान, "आटा मैंने मर-मरकर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरों के लिए पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ।"



सुजान भंडार-घर में गए और एक छोटी सी छबड़ी को जों भरे हुए निकले। जों सेर भर से कम न था। सुजान ने जान-बूझकर केवल बुलाकी और भोला को चिढ़ाने के लिए, भिक्षा परंपरा का उल्लंघन किया था। तिस पर भी यह दिखाने के लिए कि छबड़ी में बहुत ज्यादा जों नहीं हैं, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकी इतना बोझ न सँभाल सकती थी। हाथ काँप रहा था। एक क्षण विलंब होने से छबड़ी के हाथ से छूटकर गिर पड़ने की संभावना थी। इसलिए वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे। सहसा भोला ने छबड़ी उनके हाथ से छीन ली और तयोरियाँ बदलकर बोला, "सैंत का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो। छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।"

सुजान ने खिसियाकर कहा, "मैं भी तो बैठा नहीं रहता।"

भोला, "भीख भीख की तरह ही दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि दाना-पानी बना रहे, और तुम्हें लुटाने की सूझी। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है?"

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से कह दिया, "'बाबा, इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है।'" और पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पाँव थके नहीं हैं। घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर? उसी ने घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घर वाले जो रुखा दे दें, वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

संध्या हो गई थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भरकर लाया। सुजान ने नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धीरे-धीरे तंबाकू जल गया। जरा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुजरी, भोजन तैयार हुआ, भोला बुलाने आया। सुजान ने कहा, "भूख नहीं है।" बहुत मनावन करने पर भी न उठा।

तब बुलाकी ने आकर कहा, "खाना खाने क्यों नहीं चलते? जी तो अच्छा है?"

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी पर था। यह भी लड़कों के साथ है। यह बैठी देखती रही और भोला ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना न निकला कि ले जाते हैं तो ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रात में मईया लगा के जुआर की रखवाली करता था।

जेठ-बैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था, और अब मेरा घर पर इतना भी अधिकार नहीं है कि भीख तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप

रहना चाहिए था, चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरों को खिला देता हूँ, इसमें किसी के बाप का क्या साझा? अब इस वक्त मनाने आई है, जिसने खसम की लातें न खाई हों, कभी कड़ी निगाह से देखना तक नहीं। रुपए जमा कर लिए हैं, तो मुझी से घमंड करती है। अब इसे बेटे प्यारे हैं, मैं तो निखटू, लुटाऊ, घर-फूँकू, घोंघा हूँ। मेरी इसे क्या परवाह? तब लड़के न थे, जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर वैद्य के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ। मुझे घर से मतलब ही क्या?

बोला, "अब खा-पीकर क्या करूँगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिलाकर दाने को क्यों खराब करेगी? रख दे, बेटे दूसरी बार खाएँगे?"

बुलाकी, "तुम तो जरा-जरा सी बात पर तिनक जाते हो। सच कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ या और कुछ?"

सुजान, "हाँ, बेचारा इतना कहकर रह गया। तुम्हें तो मजा तब आता, जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता। क्यों? अगर यही अभिलाषा है तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो दो-चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाए।"

बुलाकी, "हाँ, और क्या, यही तो नारी का धर्म है। अपने भाग सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली। जिस बल चाहते हो, बिठाते हो। ऐसी मुँहजोर होती तो घर में एक दिन भी निबाह न होता।"

सुजान, "हाँ भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि देवी थी और हो। मैं तब भी राक्षस था और अब भी दैत्य हो गया हूँ। बेटे कमाऊ हैं, उनकी सी न कहोगी तो क्या मेरी सी कहोगी, मुझसे अब क्या लेना-देना है?"

बुलाकी, "तुम झगड़ा करने पर तुले बैठे हो और मैं झगड़ा बचाती हूँ कि चार आदमी हँसेंगे। चलकर खाना खा लो सीधे से, नहीं तो मैं जाकर सो रहूँगी।"

सुजान, "तुम भूखी क्यों सो रहोगी? तुम्हारे बेटों की तो कमाई है। हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ।"

बुलाकी, "बेटे तुम्हारे भी तो हैं।"

सुजान, "नहीं, मैं ऐसे बेटों से बाज आया। किसी और के बेटे होंगे। मेरे बेटे होते तो क्या मेरी दुर्गति होती?"

बुलाकी, "गालियाँ दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी। सुनती थी, मरद बड़े समझदार होते हैं, पर तुम सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे वैसा ही काम करे। अब हमारा और तुम्हारा निबाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें जो लड़कों

को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गई, तुम क्यों नहीं समझ पाते? जो कमाता है, उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो? इतने दिनों तक तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो? आधी रोट्टी खाओ, भगवान् का भजन करो और पड़े रहो। चलो, खाना खा लो।"

सुजान, "तो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ?"

बुलाकी, "बात जो थी, वह मैंने कह दी। अब अपने को जो चाहो समझो।"

सुजान न उठा। बुलाकी हारकर चली गई।

सुजान के सामने अब एक नई समस्या खड़ी हो गई थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता रहा। परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी उसे खबर न थी। लड़के उसका सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात उसे भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने चिलम नहीं पीते, खाट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृहस्वामी होने का प्रमाण न था? पर आज उसे यह ज्ञात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। अब तक जिस घर में राज किया, उसी घर में पराधीन बनकर वह नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता, मंदिर का पुजारी बनकर वह नहीं रह सकता।

न जाने कितनी रात बाकी थी। सुजान ने उठकर गँडासे से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गाँव सोता था, पर सुजान चारा काट रहा था। इतना श्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ दिया था, बराबर चारे के लिए हाय-हाय पड़ी रहती थी। शंकर भी काटता था, भोला भी काटता था, पर चारा पूरा न पड़ता था। आज वह इन लौंडों को दिखा देंगे, चारा कैसे काटना चाहिए, उसके सामने कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया और टुकड़े कितने महीन और सुडौल थे, मानो साँचे में ढाले गए हों।

मुँह-अँधेरे बुलाकी उठी तो कटिया का ढेर देखकर दंग रह गई और बोली, "क्या भोला आज रात भर कटिया को काटता रह गया? कितना कहा कि बेटा, जी से जहान है, पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।"

सुजान भगत ने ताने से कहा, "वह सोता ही कब है? जब देखता हूँ, काम ही काम करता रहता है। ऐसा कमाऊ संसार में और कौन होगा?"

इतने में भोला आँखें मलते हुए बाहर निकला। उसे भी यह ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। माँ से बोला, "क्या शंकर आज बड़ी रात को उठा था अम्मा?"

बुलाकी, "वह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा, तुमने काटी होगी।"

भोला, "मैं तो सवेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर चाहे जितना काम कर लूँ, पर रात को मुझसे नहीं उठा जाता।"

बुलाकी, "तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?"

भोला, "हाँ, मालूम होता है रात भर सोए नहीं। मुझसे कल बड़ी भूल हुई। अरे, वो तो हल लेकर जा रहे हैं। जान देने पर उतार हो गए हैं क्या?"

बुलाकी, "क्रोधी तो सदा के हैं। अब किसी की सुनेंगे थोड़े ही।"

भोला, "शंकर को जगा दो, मैं भी जल्दी से मुँह-हाथ धोकर हल ले जाऊँ।"

जब और किसानों के साथ भोला हल लेकर खेत में पहुँचा तो सुजान आधा खेत जोत चुका था। भोला ने चुपके से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी।

दोपहर हुई। सभी किसानों ने हल छोड़ दिया, पर सुजान भगत अपने काम में मग्न रहा। भोला थक गया था। उसकी बार-बार इच्छा होती कि बैलों को खोल दे, मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता। सबको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं?

आखिर डरते-डरते बोला, "दादा, अब तो दोपहर हो गई। हल खोल दें न?"

सुजान, "हाँ, खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो, मैं डाँड फेंककर आता हूँ।"

भोला, "मैं संझा को डाँड फेंक दूँगा।"

सुजान, "तुम क्या फेंक दोगे। देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है। तभी तो बीच में पानी जम जाता है। इस गोड़ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानाश कर दिया।"

बैल खोल दिए गए। भोला बैलों को लेकर घर चला गया, पर सुजान डाँड फेंकते रहे। आध घंटे के बाद डाँड फेंककर वह घर आए, मगर थकान का नाम न था। नहा-खाकर आराम करने के बदले उन्होंने बैलों को सहलाना शुरू किया, उनकी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ सहलाई। बैलों की पूँछें खड़ी थीं। सुजान की गोद में सिर रखे उन्हें अकथनीय सुख मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनंद प्राप्त हुआ था। उनकी आँखों में कृतज्ञता भरी हुई थी, मानो वे कह रहे थे, हम तुम्हारे साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की ओर चले। दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानो उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी।

भोला ने मड़ैया में लेटे-लेटे पिता को हल लिये जाते देखा, पर उठ न सका। उसकी हिम्मत

छूट गई। उसने कभी इतना परिश्रम न किया था। उसे बनी-बनाई गृहस्थी मिल गई थी, उसे ज्यों-त्यों चला रहा था। इन दामों वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था। जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं। हँसने-बोलने के लिए, गाने-बजाने के लिए भी तो उसे कुछ समय चाहिए। पड़ोस के गाँव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकेगा? किसी गाँव में बारात है? वृद्धजनों के लिए ये बाधाएँ नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेल-तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा, "भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गए।"

भोला, "जाने दो अम्मा, मुझसे यह नहीं हो सकता।"

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुईं, "निकल गई सारी भगती। भगत बना हुआ था, माया में फँसा हुआ है। आदमी काहे को, भूत है।"

मगर भगतजी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं। उनका आदर-सत्कार होता है। अबकी उसकी खेती ने सोना उगल दिया है। बुखारी में अनाज रखने की जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पाँच मन मुश्किल से होता था, उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलिहानों में सतयुग का राज था। जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है, जब कृषकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम होता है, जब गर्व से उनका हृदय उछलने लगता है। सुजान भगत टोकरे में अनाज भर-भर कर देते थे और दोनों लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिक्षुक भगतजी को घेरे हुए थे। उनमें वह भिक्षुक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिक्षुक से पूछा, "क्यों बाबा, आज कहाँ-कहाँ चक्कर लगा आए?"

भिक्षुक, "अभी तो कहीं नहीं गया भगतजी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ।"

भगत, "'अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है। इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको, ले जाओ।"

भिक्षुक ने क्षुब्ध नेत्रों से ढेर को देखकर कहा, "जितना अपने हाथ से उठाकर दे दोगे, उतना ही लूँगा।"

भगत, "नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।"

भिक्षुक के पास एक चादर थी, उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझकर आश्वासन देते हुए बोले, "बस, इतना तो एक बच्चा भी उठा ले जाएगा।"

भिक्षुक ने भोला की ओर संदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा, "मेरे लिए इतना ही काफी है।"

भगत, "नहीं, तुम सकुचाते हो। अभी और भरो।"

भिक्षुक ने एक पैसेरी अनाज और भरा, और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत, "उसकी ओर क्या देखते हो, बाबाजी? मैं जो कहता हूँ, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।"

भिक्षुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी तो कितनी भद्दा होगी, और भिक्षुकों को हँसने का अवसर मिल जाएगा। सब यही कहेंगे कि भिक्षुक कितना लोभी है? उसे अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बाँधकर बोले, "इसे उठा ले जाओ।"

भिक्षुक, "बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।"

भगत, "अरे! इतना भी न उठ सकेगा। बहुत होगा तो मन भर, भला जोर तो लगाओ, देखूँ, उठा सकते हो या नहीं।"

भिक्षुक ने गठरी को आजमाया। भारी थी, जगह से हिली भी नहीं, फिर बोला, "भगतजी, यह मुझसे न उठ सकेगी।"

भगत, "अच्छा, बताओ किस गाँव में रहते हो?"

भिक्षुक, "बड़ी दूर है भगतजी, अमोला का नाम तो सुना होगा।"

भगत, "अच्छा, आगे-आगे चलो, मैं पहुँचा दूँगा।"

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठाई और सिर पर रखकर भिक्षुक के पीछे हो लिये। देखने वाले भगत का पौरुष देखकर चकित हो गए। उन्हें क्या मालूम था कि भगत पर इस समय कौन सा नशा था। आठ महीने के निरंतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया अधिकार फिर पाया था। वही तलवार, जो केले को नहीं काट सकती, सान पर चढ़कर लोहे को काट देती है। मानव-जीवन में लाग बड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी हो तो जवान है। जिसमें लाग नहीं, गँरत नहीं, वह जवान भी मृतक है। सुजान भगत में लाग थी और उसी ने उन्हें अमानुषीय बल प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्व नेत्रों से देखा और बोले, "ये

भाट और भिक्षुक खड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाए।"



ईदगाह

रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभाव है! वृक्षों पर अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, यानी संसार को ईद की बधाई देता है! गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं! किसी के कुरते में बटन नहीं हैं, पड़ोस के घर में सुई-धागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर पर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बेलों को सानी-पानी दे दें, ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना, दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं, लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे, इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे, आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। उन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेव्यों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेव्यों खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बड़हवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्म्म हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस, बारह, उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनत पैसे में अनगिनती चीजें लाएँगे-खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या, और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता क्या बीमारी है। कहती तो कौन सुनने वाला था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपए कमाने गए हैं, बहुत सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं, इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर

बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती हैं। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा, मोहसिन, नूरे और शम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे।

अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन, उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अंधकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को? इस घर में उसका काम नहीं, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आए, हामिद की आनंद भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है, "तुम डरना नहीं अम्मा, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।"

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का अमीना के सिवा और कौन है! उसे कैसे अकेले मेले जाने दे? उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो? नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्ही सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे? पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद में ले लेती, लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घंटों चीजें जमा करने में लगेंगे। माँगे का ही तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिले थे, आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती? हामिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने बचे रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटुवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाए। धोबन और नाइन, मेहतरानी और चुड़िहारिन सभी तो आएँगी? और मुँह क्यों चुराए? साल भर का त्योहार है। जिंदगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चों को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला, और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते, फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इंतजार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं? हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है? शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अंदर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फलाँग पर हैं। खूब हँस रहे हैं, माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लब-घर है। इतने बड़े

कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे? सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर! हमिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन काँड़ी के! रोज मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या, क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अंदर नहीं जाने देते और वहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-दाढ़ी वाले। और मेम भी खेलती हैं, सच! हमारी अम्मा को यह दे दो, क्या नाम है, बँट तो उसे पकड़ ही न सकें, घुमाते ही लुढ़क जाएँ।

महमूद ने कहा, "हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्लाह कसम।"

मोहसिन बोला, "चलो माना, आटा पीस डालती हैं। जरा सा बँट पकड़ लेंगी तो हाथ काँपने लगेंगे! सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तक अँधेरा छा जाए।"

महमूद, "हाँ, उछल-कूद तो नहीं सकती, लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा बड़ी थी, अम्मा इतना तेज दौड़ी कि मैं उन्हें न पकड़ सका, सच।"

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता? देखो न, एक-एक दुकान पर मनो होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपए देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपए।

हामिद को यकीन न आया, "ऐसे रुपए जिन्नात को कहाँ से मिल जाएँगे?"

मोहसिन ने कहा, "जिन्नात को रुपए की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें चले जाएँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में! हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएँ।" हामिद ने फिर पूछा, "जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते हैं?"

मोहसिन, "एक-एक सिर आसमान के बराबर होता है जी! जमीन पर खड़ा हो जाए तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।"

हामिद, "लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे? कोई मुझे यह मंत्र बता दे तो एक जिन को खुश कर लूँ।"

मोहसिन, "अब यह तो न जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी हो जाए, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम बता देंगे। जुमराती का बछ्वा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला, तब झूख मारकर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरंत बता दिया, मवेशीखाने में है और वही मिला।

जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबर दे जाते हैं।"

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यही सब कानसटिबिल कवायद करते हैं। रेंटन! फाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं तो चोरियाँ हो जाएँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया, "यह कानसटिबिल पहरा देते हैं? तभी तुम बहुत जानते हो अजी हजरत, यह चोरी करते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनके मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। तभी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं। मेरे मामू एक थाने में कानसटिबिल हैं। सौ रुपया महीना पाते हैं, लेकिन पचास रुपए घर भेजते हैं। अल्लाह कसम! मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपए कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे-बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले-हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।"

हामिद ने पूछा, "यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?" मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला, "अरे पागल! इन्हें कौन पकड़ेगा! पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं, लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए, मामू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्लाह कसम, पेड़ के नीचे! फिर जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन-भाँड़े आए।"

हामिद, "एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं? कहाँ पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आएँ?" अब बस्ती घनी होने लगी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नजर आने लगीं, एक से एक भड़कीले कपड़े पहने हुए। कोई ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा सा दल अपनी विपन्नता से बेखबर, संतोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते और पीछे से हॉर्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आई। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है, नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जानमाज बिछी हुई है और रोजदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगह के नीचे तक, जहाँ जानमाज भी नहीं हैं। नए आने वाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं, आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुंदर संचालन है, कितनी सुंदर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सजदे में झुक जाते हैं और एक साथ खड़े हो जाते हैं, कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ विस्तार और अनेकता हृदय को श्रद्धा,

गर्व और आत्मानंद से भर देती थी, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

नमाज खत्म हो गई। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दुकान पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है, एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चरखी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों में लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन, नूरे और शम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई जरा सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चरखियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। उधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं-सिपाही और गुजरिया, राज और वकी, भिस्ती और धोबिन और साधु। वाह! कितने सुंदर खिलौने हैं, जैसे अब बोलना ही चाहते हों। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वरदी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए, मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिस्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है, शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेलना ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर, काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चला आ रहा है। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े तो चूर-चूर हो जाए। जरा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है, "मेरा भिस्ती रोज पानी दे जाएगा साँझ-सबरे।"

महमूद कहता है, "और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा तो फॉरन बंदूक से ढेर कर देगा।"

नूरे कहता है, "और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।"

शम्मी कहता है, "और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोएगी।"

हामिद खिलौनों की निंदा करता है, "मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जाएँ।" लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि जरा ढेर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते हैं, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब जामुन, किसी

ने सोहन हलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक् हैं। अभागों के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है, "हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार हैं।"

हामिद को संदेह हुआ, ये केवल क्रूर विनोद हैं, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और शम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन, "अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्लाह कसम, ले जा।"

हामिद, "खे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?"

शम्मी, "तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?"

महमूद, "हमसे गुलाबजामुन ले जाओ हामिद। मोहसिन बदमाश है।"

हामिद, "मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।"

मोहसिन, "लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लूँ। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?"

महमूद, "खूब समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।"

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीजों की लगी थीं, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वे सब आगे बढ़ जाते हैं, हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तब से रोटियाँ उतारती है तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितना प्रसन्न होंगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलाँने से क्या फायदा? व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है, फिर तो खिलाँने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। यह तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जाएँगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तब से उतार लो, चूल्हें में सेंक लो। कोई आग माँगने आए तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्मा बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाजार आएँ, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं? रोज हाथ जला लेती है।

हामिद के साथी आगे बढ़ गए। सबील पर सबके सब शरबत पी रहे थे। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो, मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा।

खाएँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुंसियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जाएगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी? अम्मा चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी, 'मेरा बच्चा अम्मा के लिए चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है।' इन लोगों के खिलाँने पर कौन इन्हें दुआएँ देगा? बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं और तुरंत सुनी जाती हैं। मैं भी इनके मिजाज क्यों सहूँ? हम गरीब ही सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाते। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आएँगे। अम्मा भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलाँने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलाँने दूँगा और दिखा दूँगा कि दोस्तों के साथ इस तरह का सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवडियाँ लीं, तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सबके सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें मेरी बला से! उसने दुकानदार से पूछा, "यह चिमटा कितने का है?"

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा, "तुम्हारे काम का नहीं है जी!"

"बिकाऊ है कि नहीं?"

"बिकाऊ क्यों नहीं है? और यहाँ क्यों लाद लाए है?"

"तो बताते क्यों नहीं, कितने पैसे का है?"

"छह पैसे लगेंगे।"

हामिद का दिल बैठ गया।

"ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।"

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा, "तीन पैसे लोगे?"

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं, बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानो बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। जरा सुनें, सबके सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा, "यह चिमटा क्यों लाया पगले, इसे क्या करेगा?"

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटककर कहा, "जरा अपना भिस्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँगी बेचारे की।" महमूद बोला, "तो यह चिमटा कोई खिलाँना है?"

हामिद, "खिलाँना क्यों नहीं है! अभी कंधे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो

तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है चिमटा।"

शम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला, "मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।"

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा, "मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा सा पानी लग जाए तो खत्म हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।" चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, अब पैसे किसके पास धरे हैं? फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक, इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, अहमद, शम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। शम्मी तो विधर्मी हो गया, दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए, मियाँ भिस्ती के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा, "अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता?"

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा, "भिस्ती को एक डाँट लगाएगा, तो दाँड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।"

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई, "अगर बचा पकड़ जाए तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेगा। तब तो वकील साहब के पैरों पड़ेगा।"

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा, "हमें पकड़ने काँन आएगा?"

नूरे ने अकड़कर कहा, "यह सिपाही बंदूकवाला।"

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा, "यह बेचारा हम बहादुर रुस्तमे-हिंद को पकड़ेगा! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाए। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेगा। पकड़ेगा क्या बेचारा।"

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई, "तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग से जलेगा।"

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा, लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरंत जवाब दिया, "आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लॉडियों की तरह घर में घुस जाएंगे। आग में वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिंद ही कर सकता है।"

महमूद ने एक जोर लगाया, "वकील साहब कुरसी-मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?"

इस तर्क ने शम्मी और नूरे को भी राजी कर दिया! कितने ठिकाने की बात कही है पट्टे ने! चिमटा बावरचीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है? हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा, तो उसने धाँधली शुरु की, "मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।"

बात कुछ बनी नहीं, खाली गाली-गलौज थी। लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानो कोई धेलचा कानकोंआ किसी गंडेवाले कनकोंए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज है। उसको पेट के अंदर डाल दिया जाना बेतुकी सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिंद है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, शम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हराने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए, पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलाँनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जाएँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों।

संधि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा, "जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारे भिश्ती लेकर देखो।"

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलाँने पेश किए।

हामिद को इन शर्तों को मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया, और उनके खिलाँने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलाँने हैं।

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोछे, "मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच! यह चिमटा भला इन खिलाँनों की क्या बराबरी करेगा, मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।"

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया था। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन, "लेकिन इन खिलाँनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा?" महमूद, "दुआ को लिए फिरते हो, उलटे मार न पड़े। अम्मा जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलाँने मिले?"

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलाँनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसे ही में तो उसे सबकुछ करना था और उन पैसे के इस उपायों पर पछतावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिंद है और सभी खिलाँनों का बादशाह है। रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिए थे। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया, उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

ग्यारह बजे गाँव में हलचल मच गई। मेलेवाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन दौड़कर आई और भिंती उसके हाथ से छीन लिया। मारे खुशी के जो उछली तो मियाँ भिंती नीचे आ रहे और स्वर्गलोक सिधार गए। इस पर भाई-बहिन में मार-पीट हुई, दोनों खूब रोए। उसकी अम्मा यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अंत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता था, उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में खूंटियाँ गाड़ी गईं, उन पर लकड़ी का पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खर की ऊन्नी टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं, क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! कानून की गरमी दिमाग पर चढ़ जाएगी कि नहीं? बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगा। मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ गए और उनका माटी-चोला माटी में मिल गया। फिर बड़े जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाए गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरह 'सोने वालो जागते रहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए, नूरे को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बंदूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है।

महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है, उसको ऐसा मरहम मिल गया है जिससे वह टूटी टाँगों को आनन-फानन में जोड़ सकता है, केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी

टाँग भी तोड़ दी जाती हैं। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है, अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

"यह चिमटा कहाँ था?"

"मैंने मोल लिया है।"

"कैसे पैसे में?"

"तीन पैसे दिए।"

अमीना ने छाती पीट ली, "यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुई, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा! सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?"

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा, "तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे लिया।" बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है! दूसरों को खिलाँने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा! इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई, हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र! बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता।



बेटों वाली विधवा

पंडित अयोध्यानाथ का देहांत हुआ तो सबने कहा, "ईश्वर आदमी को ऐसी ही मौत दे।" चार जवान बेटे थे, एक लड़की। चारों लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की क्वारंटी थी। संपत्ति भी काफी छोड़ी।

एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हजार के गहने और बीस हजार नगद। विधवा फूलमती को पति-शोक तो हुआ और कई दिन तक वह बेहाल रही; लेकिन जवान बेटों को सामने देखकर उसे ढाँढ़स हुआ। चारों लड़के एक-से-एक सुशील, चारों बहुएँ एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती तो चारों बारी-बारी से उसके पाँव दबातीं। वह स्नान करके उठती तो उसकी साड़ी छाँटतीं। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बड़ा लड़का कामता एक दफ्तर में 50 रुपए पर नौकर था, छोटा उमानाथ डॉक्टरी पास कर चुका था और कहीं औषधालय खोलने की फिक्र में था, तीसरा दयानाथ बी-ए- प्रथम में फेल हो गया था और पत्रिकाओं में लेख लिखकर कुछ-न-कुछ कमा लेता था, चौथा सीतानाथ चारों में सबसे कुशाग्र और होनहार था और अब की साल बी-ए- की तैयारी में लगा हुआ था। किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता। फूलमती घर की मालकिन थी, गोया कि कुंजियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं। बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है किंतु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।

संध्या हो गई थी। पंडित को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरही है, ब्रह्मभोज होगा। बिरादरी के लोग निमंत्रित होंगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी देख रही थी कि पल्लेदार बोरे में आटा लाकर रख रहे थे। घी के टीन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। महापात्र के लिए दान की चीजें लाई गईं-बरतन, कपड़े, पलंग, बिछापन, छाते, जूते, छड़ियाँ, लालटेन आदि, किंतु फूलमती को कोई चीज नहीं दिखाई गई। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिए थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती, उसे पसंद करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फैसला करती, तब इन चीजों को भंडारे में रखा जाता। क्यों उसे दिखाने और उसकी

राय लेने की जरूरत नहीं समझी गई? अच्छा! वह आटा तीन बोरी क्यों आया? उसने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। घी भी पाँच ही कनस्तर हैं, उसने तो दस कनस्तर मँगवाए थे। इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही-दूध आदि में भी कमी की गई होगी। किसने उसके हुक्म में हस्तक्षेप किया? जब उसने एक बात तय कर दी, तब किसे उसको घटाने-बढ़ाने का अधिकार है।

आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किए गए, एक कहा तो एक! किसी ने मीन-मेख न की। यहाँ तक कि पं-अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध न कहते थे पर आज उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है। इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती?

कुछ देर तक तो वह जल्ट किए बैठी रही; पर अंत में न रहा गया। स्वायत्त-शासन उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध में भरी हुई आई और कामतानाथ से बोली, "क्या आटा तीन बोरे ही लाए? मैंने तो पाँच बोरों के लिए कहा था और घी भी पाँच ही टिन मँगवाया! तुम्हें याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था? किफायत को मैं बुरा नहीं समझती, लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा, उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है!"

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल स्वीकार न की, लज्जित भी नहीं हुआ। एक मिनट तो विद्रोही भाव से खड़ा रहा, फिर बोला, "हम लोग की सलाह तीन ही बोरों की हुई और तीन बोरों के लिए पाँच टिन घी काफी था। इसी हिसाब से और चीजें भी कम कर दी गई हैं।" फूलमती उग्र होकर बोली, "किसकी राय से आटा कम किया गया है?"

"हम लोगों की राय से।"

"तो मेरी राय कोई चीज नहीं है?"

"हैं क्यों नहीं लेकिन अपना हानि-लाभ तो हम भी समझते हैं।"

फूलमती हक्की-बक्की होकर उसका मुँह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। अपना हानि-लाभ! अपने घर में हानि-लाभ की जिम्मेदार वह आप हैं। दूसरों को, चाहे वे उसके पेट के जनमे पुत्र ही क्यों न हों, उसके कामों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार? यह लौंडा तो इस ढिठाई से जवाब दे रहा है मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मरकर गृहस्थी जोड़ी है, मैं तो गैर हूँ! जरा हेकड़ी तो देखो।

उसने तमतमाते हुए मुख से कहा, "मेरे हानि-लाभ के जिम्मेदार तुम नहीं हो। मुझे इख्तियार है, जो उचित समझूँ वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ। आगे के लिए खबरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।"

अपने विचार से उसने काफी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लड़के ही तो हैं, समझे होंगे, कुछ किफायत करनी

चाहिए। उनसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्मा तो खुद हरेक काम में किफायत किया करती हैं।

अगर इन्हें मालूम होता कि इस काम में मैं किफायत पसंद न करूँगी, तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खड़ा था और उसकी भावभंगिमा से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नहीं है, पर फलमती निश्चित होकर अपनी कोठरी में चली गई। इतनी तम्बीह पर भी किसी को उनकी अवज्ञा करने की सामर्थ्य हो सकती है, इसकी संभावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर यह हकीकत खुलने लगी कि इस घर में अब उसकी वह हैसियत नहीं रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। संबंधियों के यहाँ से नेवते में शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभालकर रख रही थी। कोई भी उससे पूछने नहीं आता। बिरादरी के लोग भी जो कुछ पूछते हैं, कामतानाथ से या बड़ी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बड़ा इंतजामकार है, रात-दिन भंग पिए पड़ा रहता है, किसी तरह रो-धोकर दफ्तर चला जाता है। उनमें भी महीने में पंद्रह नागों से कम नहीं होते। वह तो कहो, साहब पंडितजी का लिहाज करता है, नहीं अब तक कभी का निकाल देता और बड़ी बहू जैसी फूहड़ औरत भला इन बातों को क्या समझेगी? अपने कपड़े-लत्ते तक तो जतन से रख नहीं सकती, चली है गृहस्थी चलाने। भद्द होगी और क्या। सब मिलकर कुल की नाक कटवाएँगे। वक्त पर कोई-न-कोई चीज कम हो जाएगी। इन कामों के लिए बड़ा अनुभव चाहिए! कोई चीज तो इतनी ज्यादा बन जाएगी कि मारी-मारी फिरेगी। कोई चीज इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नहीं। आखिर इन सबों को हो क्या गया है! अच्छा, बहू तिजोरी क्यों खोल रही है? वह आज मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलने वाली कौन होती है। कुंजी उसके पास है अवश्य; लेकिन जब तक मैं रुपए न निकलवाऊँ, तिजोरी नहीं खोलती; आज तो इस तरह खोल रही है मानो मैं हूँ ही नहीं। यह मुझसे न बरदाश्त होगा।

वह झमककर उठी और बहू के पास जाकर कठोर स्वर में बोली, "तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने के लिए नहीं कहा?"

बड़ी बहू ने निस्संकोच भाव में उत्तर दिया, "बाजार से सामान आया है, तो दाम न दिया जाएगा?"

"कौन चीज किस भाव से आई है और कितनी आई है, यह मुझे कुछ नहीं मालूम! जब तक हिसाब-किताब न हो जाए, रुपए कैसे दिए जाएँ?"

"हिसाब-किताब सब हो गया है?"

"किसने किया?"

"अब मैं क्या जानूँ, किसने किया? जाकर मरदों से पूछो। मुझे हुक्म मिला, रुपए लाकर दे दो, रुपए लिये जाती हूँ।"

फूलमती खून का घँट पीकर रह गई। इस वक्त बिगड़ने का अवसर न था। घर में मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लड़कों को डाँटा तो लोग यही कहेंगे कि इनके घर में पंडितजी के मरते ही फूट पड़ गई। दिल पर पत्थर रखकर फिर अपनी कोठरी में चली आई। जब मेहमान विदा हो जाएँगे, तब वह एक-एक की खबर लेगी। तब देखेगी, कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है? इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किंतु कोठरी के एकांत में भी वह निश्चित न बैठी थी, सारी परिस्थिति को गिद्ध-दृष्टि से देख रही थी, कहाँ सत्कार का कौन सा नियम भंग होता है, कहाँ मर्यादाओं की उपेक्षा की जाती है। भोज आरंभ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पंगतों में बिठा दी गई। आँगन में मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी सी जगह में कैसे बैठ जाएँगे? क्या आदमी के ऊपर आदमी बैठाए जाएँगे? दो पंगतों में लोग बिठाए जाते तो क्या बुराई हो जाती? यही तो होता कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता; मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोएँ। लोग कितने सटकर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नहीं। पत्तल एक-पर-एक रखे हुए हैं। पुरियाँ ठंडी हो गई, लोग गरम-गरम माँग रहे हैं। मैदे की पुरियाँ ठंडी होकर चिमड़ी हो जाती हैं। इन्हें कौन खाएगा? रसोइए को कढ़ाव पर से न जाने क्यों उठा लिया गया। यही सब बातें नाक काटने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियों में नमक नहीं। बड़ी जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे होंठ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुँह न खोल सकती थी। नमक पीसा और पत्तलों पर डाला गया। इतने में फिर शोर मचा, "पानी गरम है, ठंडा पानी लाओ।" ठंडे पानी का कोई प्रबंध नहीं था, बरफ भी न मँगाई थी। आदमी बाजार दौड़ाया गया, मगर बाजार में इतनी रात गए बरफ कहाँ? आदमी खाली हाथ लौट आया। मेहमानों को वही नल का पानी पीना पड़ा। फूलमती का बस चलता तो लड़कों का मुँह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर में कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक बनने के लिए मरते हैं। बरफ जैसी जरूरी चीज मँगवाने की भी किसी को सुधि कहाँ से रहे, जब किसी को गप लड़ाने से फुरसत मिले। मेहमान अपने दिल में क्या कहेंगे कि चले हैं बिरादरी को भोज देने और घर में बरफ तक नहीं।

अच्छा, फिर यह हलचल क्यों मच गई! अरे, लोग पंगत से उठे जा रहे हैं। क्या मामला है?

फूलमती उदासीन न रह सकी। कोठरी से निकलकर बरामदे में आई और कामतानाथ से पूछा, "क्या बात हो गई लल्ला? लोग उठे क्यों जा रहे हैं?"

कामता ने कोई जवाब न दिया, वहाँ से खिसक गया। फूलमती झुँझलाकर रह गई। सहसा कहारिन मिल गई। फूलमती ने उससे भी वही प्रश्न किया। मालूम हुआ, किसी के शोरबे में

मरी हुई चुहिया निकल आई। फूलमती चित्रलिखित सी वहीं खड़ी रह गई। भीतर ऐसा उबाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले। अभागे, भोज का प्रबंध करने चले थे। इस फूहड़पन की कोई हद है, कितने आदमियों का धर्म सत्यानाश हो गया। फिर पंगत क्यों न उठ जाए? आँखों से देखकर अपना धर्म कौन गँवाएगा? आह! सारा किया-धरा मिट्टी में मिल गया! सैकड़ों रुपए पर पानी फिर गया, बदनामी हुई वह अलग।

मेहमान उठ चुके थे। पत्तलों पर खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा था। चारों लड़के आँगन में लज्जित से खड़े थे। एक दूसरे को इलजाम दे रहा था। बड़ी बहू अपनी देवरानियों पर बिगड़ रही थी। देवरानियाँ सारा दोष कुमुद के सिर डालती थीं। कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर बोली, "मुँह पे कालिख लगी कि नहीं? या अभी कुछ कसर बाकी है? अब मरो सब-के-सब जाकर चुल्लू भर पानी में। शहर में कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहे!"

किसी लड़के ने जवाब न दिया।

फूलमती और भी प्रचंड होकर बोली, "तुम लोगों को क्या? किसी को शरम-हया तो है नहीं। आत्मा तो उनकी रो पड़ी है, जिन्होंने अपनी जिंदगी घर की मरजाद बनाने में खत्म कर दी। उनकी पवित्र आत्मा को तुमने क्यों कलंकित किया? सारे में थू-थू हो रही है। अब कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाब करने तो आएगा नहीं।"

कामतानाथ कुछ देर तो चुपचाप खड़ा सुनता रहा, आखिर झुँझलाकर बोला, "अच्छा, अब चुप रहो अम्मा। भूल हुई, हम सब मानते हैं, बड़ी भयंकर भूल हुई लेकिन क्या अब उसके लिए घर के प्राणियों को हलाल कर डालोगी? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछताकर रह जाता है। किसी की जान तो नहीं मारी जाती?"

बड़ी बहू ने अपनी सफाई दी, "हम क्या जानते थे कि बीबी (कुमुद) से इतना सा काम भी न होगा। इन्हें चाहिए था कि देखकर तरकारी कढ़ाव में डालती। टोकरी उठाकर कढ़ाव में डाल दी। इसमें हमारा क्या दोष?"

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा, "इसमें न कुमुद का कसूर है न तुम्हारा, न मेरा। संयोग की बात है। बदनामी भाग में लिखी थी, वह हुई। इतने बड़े भोज में एक-एक मुट्ठी तरकारी कढ़ाव में नहीं डाली जाती, टोकरे-के-टोकरे उड़ेल दिए जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना हो ही जाती है, पर इसमें कैसी जग-हँसाई और कैसी नाक-कटाई। तुम खामखाह जले पर नमक छिड़कती हो।"

फूलमती ने दाँत पीसकर कहा, "शरमाते तो नहीं, उलटे बेहयाई की बातें करते हो।"

कामता ने निसंकोच होकर कहा, "शरमाऊँ क्यों, किसी की चोरी की है। चीनी में चींटे और आटे में धुन, यह नहीं देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पड़ी, बस यही बात बिगड़ गई। नहीं, चुपके से चुहिया निकालकर फेंक देते। किसी को खबर तक न होती।"

फूलमती ने चकित होकर कहा, "क्या कहता है, मरी चुहिया खिलाकर सबका धर्म बिगाड़ देता?" कामता हँसकर बोला, "क्या पुराने जमाने की बातें करती हो, अम्मा? इन बातों से धर्म नहीं जाता। यह धर्मात्मा लोग जो पत्तल पर उठ गए हैं, इनमें ऐसा कौन है जो भेड़-बकरी का मांस न खाता हो? तालाब के कुछे और घोड़े तक तो किसी से बचते नहीं। जरा सी चुहिया में क्या रखा था?"

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब प्रलय आने में बहुत देर नहीं है। जब पढ़े-लिखे आदमियों के मन में ऐसे अधार्मिक भाव आने लगें, तो फिर धर्म की भगवान् ही रक्षा करे। वह अपना मुँह लेकर चली गई।

दो महीने गुजर गए हैं। रात का समय है। चारों भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे में बैठ गप-शप कर रहे हैं। बड़ी बहू भी षड्यंत्र में शरीक है। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिड़ा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा, "दादा की बात दादा के साथ गई। मुरारी पंडित विद्वान भी हैं और कुलीन भी होंगे। लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता भी कुलहनता को रुपयों पर बेचे, वह नीच है, ऐसे नीच आदमी के लड़के से हम कुमुद का विवाह सेंट में भी न करेंगे, पाँच हजार दहेज तो दूर की बात है। उसे बताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास कुल बीस हजार ही तो हैं। एक-एक हिस्से में पाँच-पाँच हजार आते हैं। पाँच हजार दहेज में दे दें, तो और पाँच हजार नेग-न्योछावर, बाजे-गाजे में उड़ा दें, तो फिर हमारी तो बधिया ही बैठ जाएगी।"



दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आँखों से ऐनक उतारते हुए बोले, "मेरा विचार भी एक पत्र निकालने का है। प्रेस और पत्र में कम-से-कम दस हजार का कैपिटल चाहिए। पाँच हजार मेरे रहेंगे, तो कोई-न-कोई साझेदार पाँच हजार का मिल जाएगा। पत्र में लेख लिखकर मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।"

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा, "अजी, राम भजो, सेंट में कोई लेख छापता नहीं, रुपए कौन दिए देता है।"

दयानाथ ने प्रतिवाद किया, "नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं तो कहीं भी बिना पेशगी पुरस्कार लिए नहीं लिखता।"

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिये, "तुम्हारी बात मैं नहीं कहता भाई! तुम तो थोड़ा-बहुत मार लेते हो लेकिन सबको तो नहीं मिलता।"

बड़ी बहू ने श्रद्धा से कहा, "कन्या भाग्यवान हो तो दरिद्र घर में सुखी रह सकती है। अभागी हो तो राजा के घर में भी रोएगी। यह सब नसीबों का खेल है।"

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा भाव से देखा, "फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी करना है।"

सीतानाथ सबसे छोटा था। सिर झुकाए भाइयों की स्वार्थ भरी बातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला, "मेरे विवाह की आप लोग चिंता न करें। मैं जब तक किसी धंधे में न लग जाऊँगा, विवाह का नाम भी न लूँगा, और सच पूछिए तो मैं विवाह करना नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की जरूरत नहीं, काम करने वालों की जरूरत है। मेरे हिस्से के रुपए आप कुमुद के विवाह में खर्च कर दें। सारी बातें तय हो जाने के बाद यह उचित नहीं कि पंडित मुरारीलाल से संबंध तोड़ लिया जाए।"

उमा ने तीव्र स्वर में कहा, "दस हजार कहाँ से आएँगे?"

सीता ने डरते हुए कहा, "मैं तो अपने हिस्से के रुपए देने को कहता हूँ।"

"और शेष?"

मुरारीलाल से कहा जाए कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वह इतने स्वार्थी नहीं हैं कि इस अवसर पर कुछ बल खाने को तैयार न हो जाएँ अगर वह तीन हजार में संतुष्ट हो जाएँ, तो पाँच हजार में विवाह हो सकता है।"

उमा ने कामतानाथ से कहा, "सुनते हैं भाईसाहब, इनकी बातें?"

दयानाथ बोल उठे, "तो इसमें आप लोगों का क्या नुकसान है? यह अपने रुपए दे रहे हैं, खर्च कीजिए। मुरारी पंडित से हमारा कोई बैर नहीं है। मुझे तो इस बात की खुशी हो रही है,

भला हममें कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपए की जरूरत नहीं है। सरकार से वजीफा पाते ही हैं। पास होने पर कहीं-न-कहीं जगह मिल जाएगी। हम लोगों की हालत तो ऐसी नहीं।"

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया, "नुकसान की एक ही कही। इसमें से एक को कष्ट हो तो क्यों और लोग बैठे देखेंगे? यह अभी लड़के हैं, इन्हें क्या मालूम, समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है? कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वजीफा मिल जाए, या सिविल सर्विस में आ जाएँ। उस वक्त सफर की तैयारियों में चार-पाँच हजार लग जाएँगे। तब किसके सामने हाथ फैलाए फिरेंगे? मैं यह नहीं चाहता कि दहेज के पीछे इनकी जिंदगी नष्ट हो जाए।"

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड़ लिया। सकुचाता हुआ बोला, "हाँ, यदि ऐसा हुआ तो बेशक मुझे रुपए की जरूरत होगी।"

"क्यों ऐसा होना असंभव है?"

"असंभव तो मैं नहीं समझता, लेकिन कठिन अवश्य है। वजीफे उन्हें मिलते हैं, जिसके पास सिफारिशें होती हैं, मुझे कौन पूछता है?"

"कभी-कभी सिफारिशें धरी रह जाती हैं और बिना सिफारिश वाले बाजी मार ले जाते हैं।"

"तो आप जैसा उचित समझें। यहाँ तक मंजूर है कि विलायत न जाऊँ, पर कुमुद अच्छे घर जाए।"

कामतानाथ ने निष्ठा भाव से कहा, "अच्छा घर दहेज देने से नहीं मिलता भैया। जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीबों का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाब दे दिया जाए और और कोई ऐसा वर खोजा जाए, जो थोड़े में राजी हो जाए। इस विवाह में मैं एक हजार से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता। पंडित दीनदयाल कैसे हैं?"

उमा ने प्रसन्न होकर कहा, "बहुत अच्छे। एम-ए-, बी-ए- न सही, जजमानी से आमदनी अच्छी है।"

दयानाथ ने आपत्ति की, "अम्मा से भी तो पूछ लेना चाहिए।"

कामतानाथ को इसकी कोई जरूरत न महसूस हुई। बोले, "उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है। वही पुराने युग की बातें। मुरारीलाल के नाम पर उधार खाए बैठी हैं, यह नहीं समझती कि वह जमाना नहीं रहा। उनको तो बस कुमुद मुरारी पंडित के घर जाए, चाहे हम लोग तबाह हो जाएँ।"

उमा ने शंका उपस्थित की, "अम्मा अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।"

कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले, "गहनों पर उनका पूरा अधिकार

हैं। यह उनका स्त्री-धन है, जिसे चाहें दे सकती हैं।"

उमा ने कहा, "स्त्री-धन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी। आखिर वह भी तो दादा की ही कमाई है।"

"किसी की कमाई हो। स्त्री-धन पर उनका अधिकार है।"

"यह कानूनी गोरखधंधे हैं। बीस हजार में तो चार हिस्सेदार हों और दस हजार के गहने अम्मा के पास रह जाएँ। देख लेना, इन्हीं के बल पर वह भी कुमुद का विवाह मुरारी पंडित के घर करेंगी।"

उमानाथ इतनी बड़ी रकम को इतनी आसानी से नहीं छोड़ सकता। वह कपट-नीति में कुशल है। कोई कौशल रचकर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक्त तक कुमुद के विवाह की चर्चा करके फूलमती को भड़काना उचित नहीं। कामतानाथ ने सिर हिलाकर कहा, "भई, मैं इन चालों को पसंद नहीं करता।"

उमानाथ ने खिसियाकर कहा, "गहने दस हजार से कम के न होंगे।"

कामतानाथ ने अविचलित स्वर में कहा, "कितने ही के हों, मैं अनीति में हाथ नहीं डालना चाहता।"

"तो आप अलग बैठिए। हाँ, बीच में भाँजी न मरिएगा।"

"और तुम सीता?"

"मैं भी अलग रहूँगा।"

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया गया, तो वह उमानाथ का सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हजार में ढाई हजार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रकम के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पड़े तो क्षम्य है।

फूलमती रात को भोजन करके लेटी थी कि उमा और दया उसके पास जाकर बैठ गए। दोनों ऐसा मुँह बनाए हुए थे, मानो कोई भारी विपत्ति आ पड़ी है। फूलमती ने सशंक होकर पूछा, "तुम दोनों घबराए हुए मालूम होते हो।"

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा, "समाचार-पत्रों में लेख लिखना बड़े जोखिम का काम है अम्मा, कितना ही बचकर लिखो, लेकिन कहीं-न-कहीं पकड़ हो ही जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हजार की जमानत माँगी गई है। अगर कल तक जमानत न जमा की गई, तो गिरफ्तार हो जाएँगे और दस साल की सजा ठुक जाएगी।"

फूलमती ने सिर पीटकर कहा, "तो ऐसी बातें क्यों लिखते हो बेटा, जानते नहीं हो,

आजकल हमारे अदिन आए हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नहीं सकती?"

दयानाथ ने अपराधी भाव से उत्तर दिया, "मैंने तो अम्मा ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी; लेकिन किस्मत को क्या करूँ? हाकिम जिला इतना कड़ा है कि जरा भी रियायत नहीं करता। मैंने जितनी दौड़-धूप हो सकती थी, वह सब कर ली।"

"तो तुमने कामता से रुपए का प्रबंध करने को नहीं कहा?"

उमा ने मुँह बनाया, "उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्मा, उन्हें रुपए प्राणों से प्यारे हैं। उन्हें चाहे काला पानी हो जाए, वह एक पाई न देंगे।"

दयानाथ ने समर्थन किया, "मैंने तो उनसे इसका जिक्र ही नहीं किया।"

फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा, "चलो, मैं कहती हूँ, देगा कैसे नहीं? रुपए इसी दिन के लिए होते हैं कि गाड़कर रखने के लिए?"

उमानाथ ने माता को रोककर कहा, "नहीं अम्मा, उनसे कुछ न कहो। रुपए तो न देंगे, घर में रहने भी न देंगे उल्टे, और हाय-हाय मचाएँगे। उनको अपनी नौकरी की खैरियत मनानी है, इन्हें घर में रहने न देंगे, अफसरों में जाकर खबर दे दें, तो आश्चर्य नहीं।"

फूलमती ने लाचार होकर कहा, "तो फिर जमानत का क्या प्रबंध करोगे? मेरे पास तो कुछ नहीं है। हाँ, मेरे गहने हैं, इन्हें ले जाओ, कहीं गिरवी रखकर जमानत दे दो और आज से कान पकड़ो कि किसी पत्र में एक शब्द भी न लिखोगे।"

दयानाथ कानों पर हाथ रखकर बोला, "यह तो नहीं हो सकता अम्मा, कि तुम्हारे जेवर लेकर मैं अपनी जान बचाऊँ। दस-पाँच साल की कैद ही तो होगी, झेल लूँगा। यही बैठा-बैठा क्या कर रहा हूँ?"

फूलमती छाती पीटते हुए बोली, "कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते-जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है? उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए। जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोंकूँगी?"

उसने पिटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फरियाद की आँखों से देखा, और बोला, "आपकी क्या राय है भाईसाहब? इसी मारे मैं कहता था, अम्मा को बताने की जरूरत नहीं। जेल ही हो जाती या और कुछ।"

उमा ने जैसे सिफारिश करते हुए कहा, "यह कैसे हो सकता था कि इतनी बड़ी वारदात हो जाती और अम्मा को खबर न होती। मुझसे यह नहीं हो सकता था कि सुनकर पेट में डाल लेता; मगर अब करना क्या चाहिए; यह मैं खुद निर्णय नहीं कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्मा के गहने रखे जाएँ।"

फूलमती ने व्यथित कंठ से पूछा, "क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं। मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है?"

दया ने दृढ़ता से कहा, "अम्मा, तुम्हारे गहने तो न लूँगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यों न आ पड़े। जब आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, तो किस मुँह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ। मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हें कष्ट देता रहा।" फूलमती ने भी उतनी दृढ़ता से कहा, "तुम अगर यों न लोगे, तो मैं खुद जाकर इन्हें गिरवी रख दूँगी और हाकिम जिला के पास जाकर जमानत कर आऊँगी। अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें बंद हो जाने के बाद क्या होगा, भगवान् जाने, लेकिन जब तक जीती हूँ, कोई तुम्हारी ओर तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।"

उमानाथ ने मानो माता पर अहसान रखकर कहा, "अब तो हमारे लिए कोई रास्ता नहीं रहा, दयानाथ! क्या हरज है, ले लो, मगर याद रखो, ज्यों ही हाथ में रुपए आ जाएँ, गहने छुड़ाने पड़ेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह और कौन कर सकता है। हम बड़े अभाग हैं कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए, उसका शतांश नहीं रखते।"

दोनों ने जैसे बड़े धर्म-संकट में पड़कर गहनों की पिटारी सँभाली और चलते बने। माता वात्सल्य भरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी और उसकी संपूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने के बाद उनके भग्न मातृ-हृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनंद की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी-कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्म-समर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूँढ़ती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गंध तक न थी। त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर, अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गई।

तीन महीने और गुजर गए। माँ के गहनों पर हाथ साफ करके चारों भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियों को भी समझाते रहते थे कि उसका दिल न दुखाएँ। अगर थोड़े शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शांति मिलती है, तो इसमें क्या हानि है। चारों करते अपने मन की पर माता से सलाह ले लेते, या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातों में आ जाती और हरेक काम में सहमत हो जाती। बाग का बेचना उसे बहुत बुरा लगता था, लेकिन चारों ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचने पर राजी हो गई, किंतु कुमुद के विवाह के विषय में मर्तक्य न हो सका। माँ पं- मुरारीलाल पर जमी हुई थी, लड़के दीनदयाल पर अड़े हुए थे। एक दिन आपस में कलह हो गई।

फूलमती ने कहा, "माँ-बाप की कमाई में बेटा का हिस्सा भी है। तुम्हें सोलह हजार का बाग मिला, पच्चीस हजार का एक मकान। बीस हजार नगद है। क्या पाँच हजार भी कुमुद का हिस्सा नहीं है?"

कामता ने नम्रता से कहा, "अम्मा, कुमुद आपकी लड़की हैं तो हमारी बहिन हैं। आप दो-चार साल में प्रस्थान कर जाएँगी, पर हमारा और उसका बहुत दिनों तक संबंध रहेगा। तब यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे, जिससे उसका अमंगल हो, लेकिन हिस्से की बात कहती हो तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते खर्च करते, कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था, लेकिन अब तो हमें एक-एक पैसे की किफायत करनी पड़ेगी, जो काम एक हजार में हो जाए, उसके लिए पाँच हजार खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है।" उमानाथ ने सुधारा, "पाँच हजार क्यों दस हजार कहिए।" कामता ने भवें सिकोड़कर कहा, "नहीं, मैं पाँच हजार ही कहूँगा। एक विवाह में पाँच हजार खर्च करने की हैसियत नहीं है।"

फूलमती ने जिद पकड़कर कहा, "विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, चाहे पाँच हजार खर्च हों, चाहे दस हजार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मरकर जोड़ा, अपनी इच्छा से खर्च करूँगी। तुम्हीं ने मेरी कोख से नहीं जन्म लिया है, कुमुद भी उसी कोख से आई है। मेरी आँखों में तुम सब बराबर हो, मैं किसी से कुछ माँगती नहीं। तुम बैठे तमाशा देखो, मैं सबकुछ कर लूँगी, बीस हजार कुमुद का है।"

कामतानाथ को अब कड़वे सत्य की शरण लेने के सिवा और कोई मार्ग न रहा। बोला, "अम्मा, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं हैं, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उसमें से कुछ नहीं खर्च कर सकती।"

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया, "क्या कहा! फिर तो कहना। मैं अपने ही संचे रुपए अपनी इच्छा से खर्च नहीं कर सकती?"

"वह रुपए तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गए।"

"तुम्हारे होंगे, लेकिन मेरे मरने के पीछे।"

"नहीं, दादा के मरते ही हमारे हो गए।"

उमानाथ ने बेहयाई से कहा, "अम्मा कानून-कायदा तो नहीं जानती, नाहक उलझती हैं।" फूलमती क्रोध-विह्वल होकर बोली, "भाड़ में जाए तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नहीं मानती। तुम्हारे दादा ऐसे बड़े धन्नासेठ न थे। मैंने ही पेट और तन काटकर यह गृहस्थी जोड़ी है, नहीं आज बैठने को छाँह न मिलती! मेरे जीते-जी तुम मेरे रुपए नहीं छू सकते। मैंने तीन भाइयों के विवाह में दस-दस हजार खर्च किए हैं। वही मैं कुमुद के विवाह में भी खर्च करूँगी।"

कामतानाथ भी गरम पड़ा, "आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नहीं है।" उमानाथ ने बड़े भाई को डाँटा, "आप खामखाह अम्मा के मुँह लगते हैं। भाईसाहब! मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा, बस छुट्टी हुई। यह कायदा-कानून तो जानती नहीं, व्यर्थ की बहस करती हैं।"

फूलमती ने संयमित स्वर में कहा, "अच्छा, क्या कानून है, जरा मैं भी सुनूँ।" उमा ने निरीह भाव से कहा, "कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है, माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है।"

फूलमती ने तड़पकर पूछा, "किसने यह कानून बनाया है।"

उमा ने शांत-स्थिर स्वर में बोला, "हमारे दृषियों ने, महाराज मनु ने, और किसने।"

फूलमती एक क्षण अवाक् रहकर आहत कंठ से बोली, "तो इस घर में मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पड़ी हुई हूँ।"

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा, "तुम जैसे समझो।"

फूलमती की संपूर्ण आत्मा मानो इस वज्रपात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिंगारियों की भाँति ये शब्द निकल पड़े, "मैंने घर बनवाया, मैंने संपत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में गैर हूँ? मनु का यही कानून है और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो? अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं! इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अंधेरा! मैंने पेड़ लगाया और मैं ही उसकी छाँव में खड़ी नहीं हो सकती; अगर यही कानून है, तो इसमें आग लग जाए।"

चारों युवकों पर माता के इस क्रोध और आतंक का कोई असर न हुआ। कानून का फौलादी कवच रक्षा कर रहा था। इन काँटों का उन पर क्या असर हो सकता था?

जरा देर में फूलमती उठकर चली गई। आज जीवन में पहली बार उसका वात्सल्य-भग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे अग्निकुंड सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जलकर भस्म हो रहा था।

संध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व की ही भाँति अपनी चिता में जल रहा था।

फूलमती अपने कमरे में जाकर लेटी, तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गई है। पति के मरते ही लड़के उसके शत्रु हो जाएँगे, उसको स्वप्न में भी मालूम न था। जिन लड़कों को उसने हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला, वही आज उसके हृदय पर यों आघात कर रहे हैं। अब वह घर उसे काँटों की सेज लग रहा था। जहाँ उसकी कुछ कद्र नहीं, कुछ गिनती नहीं, वहाँ अनाथों की भाँति पड़ी रोटियाँ खाए, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था? वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी! संसार उसे थके तो क्या, और लड़कों को थके तो क्या, बदनामी तो उसी की है। दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है। जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हँसेंगे। नहीं, वह अपमान इस अनादर से कहीं ज्यादा हृदयविदारक था। अब अपना और घर का परदा ढका रखने में ही कुशल है। हाँ, अब उसे अपने बेटों की बातें और लातें गैरों की बातों और लातों की अपेक्षा फिर भी गनीमत है।

वह बड़ी देर तक मुँह ढाँपे अपनी दशा पर रोती रही। सारी रात इसी आत्मवेदना में कट गई। शरद का प्रभात डरता-डरता ऊषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैंदी छिपकर जेल से भाग आया हो। फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज तड़के ही उठी, रात भर में उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था। सारा घर सो रहा था और वह आँगन में झाड़ू लगा रही थी। रात की ओस में भीगी हुई पक्की जमीन नंगे पैरों से काँटों की तरह चुभ रही थी। पंडितजी उसे कभी इतने सवेरे उठने न देते थे। शीत उसके लिए बहुत हानिकारक थी, पर अब वह दिन नहीं। प्रकृति को भी समय के साथ बदल देने का प्रयत्न कर रही थी। झाड़ू से फुरसत पाकर उसने आग जलाई और चावल-दाल की कंकड़ियाँ चुनने लगी। कुछ देर में लड़के जागे, बहुएँ उठीं। सभी ने बुढ़िया को सदीं से सिकुड़े हुए काम करते देखा, पर किसी ने यह न कहा कि अम्मा, क्यों हलकान होती हो? शायद सब-के-सब बुढ़िया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी-तोड़कर घर का काम करना और अंतरंग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छाई हुई नजर आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दीया टिमटिमा रहा था, जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका सा झोंका काफी है।

मुरालीलाल को इन्कारी पत्र लिखने की बात पक्की हो चुकी थी। दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया। दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया, दीनदयाल की उम्र चालीस के कुछ अधिक थी, मर्यादा में भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से खुश थे। बिना किसी ठहराव के विवाह करने पर राजी हो गए। तिथि नियत हुई, बारात आई, विवाह हुआ और कुमुद विदा कर दी गई। फूलमती के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है पर चारों भाई बहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का काँटा निकल गया हो। ऊँचे कुल की कन्या मुँह कैसे खोलती। हरि-इच्छा बेकसों का अंतिम अवलंब है। घरवालों ने जिससे विवाह कर दिया, उसमें हजार ऐब हों तो भी उसका उपारथ, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम में दखल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानों का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते में क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गई तो यही कहा, "बेटा, तुम लोग जो करते हो, अच्छा ही करते हो, मुझसे क्या पूछते हो।"

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गई और कुमुद माँ के गले लिपटकर रोने लगी तो वह बेटी को अपनी कोठरी में ले गई और जो कुछ सौ-पचास रुपए और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे, बेटी के आँचल में डालकर बोली, "बेटी, मेरी तो मन की मन में रह गई नहीं क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह विदा की जाती।"

आज तक फूलमती ने अपने गहनों की बात किसी से न कही थी। लड़कों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे वह अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढ़ने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा; लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफाई देने की जरूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन में लेकर जाए कि अम्मा ने अपने गहने बहुओं के लिए रख छोड़े, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी, इसीलिए वह अपनी कोठरी में ले गई थी; लेकिन कुमुद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी, उसने गहने और रुपए आँचल से निकालकर माता के चरणों पर रख दिए और बोली, "अम्मा, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद ही लाखों रुपयों के बराबर है। तुम इन चीजों को अपने पास रखो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों का सामना करना पड़े?"

फूलमती कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा, "क्या कर रही हैं कुमुद? चल, जल्दी कर, साइत टली जाती हैं। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं, फिर तो दो-चार महीने में आएगी ही, जो कुछ लेना-देना हो ले लेना।"

फूलमती के घाव पर मानो नमक पड़ गया। बोली, "मेरे पास अब क्या है भैया, जो मैं इसे दूँगी। जाओ बेटी, भगवान् तुम्हारा सोहाग अमर करें।"

कुमुद विदा हो गई। फूलमती पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जीवन की

अंतिम लालसा नष्ट हो गई।

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर के सब कमरों में बड़ा और हवादार था। कई महीनों से उसने बड़ी बह के लिए खाली कर दिया था और खुद एक छोटी सी कोठरी में रहने लगी थी, जैसे कोई भिखारिन हो। बेटों और बहुओं से अब उसे जरा भी स्नेह न था। वह अब घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसंग से उसे प्रयोजन न था। वह केवल इसीलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दुःख का अब उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था। उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया, फिर धूमधाम हुई; लेकिन फूलमती के मुख पर आनंद की छाया तक न आई। कामतानाथ टाइफाइड में महीने भर बीमार रहा और मरकर उठा। दयानाथ ने अबकी अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छह महीने की सजा पाई। उमानाथ ने एक फौजदारी के मामले में रिश्तत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उनकी सनद छीन ली गई पर फूलमती के चेहरे पर रंज की परछाई तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा,

कोई दिलचस्पी, कोई चिंता न थी। बस पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिंदगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है, पर खाता है मन से। फूलमती बे-कहे काम करती थी, पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं। वह चेतनाशून्य हो गई थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। मलेरिया फैल रहा था। आकाश में मटियाले बादल थे, जमीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीत-ज्वर और श्वास का वितरण करती फिरती थी। घर की महरी बीमार पड़ गई। फूलमती ने घर के सारे बरतन माँजे, पानी में भीग-भीगकर सारा काम किया, फिर आग जलाई और चूल्हे पर पतिलियाँ चढ़ा दीं। लड़कों को समय पर भोजन तो मिलना ही चाहिए। सहसा उसे याद आया कि कामतानाथ नल का पानी नहीं पीते। उसी वर्षा में गंगाजल लाने चली।

कामतानाथ ने पलंग पर लेटे-लेटे कहा, "हने दो अम्मा, मैं पानी भर लाऊँगा। आज महरी खूब बैठी रही।"

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा, "तुम भीग जाओगे बेटा, सर्दी लग जाएगी।"

कामतानाथ बोले, "तुम भी तो भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाओ।"

फूलमती निर्मम भाव से बोली, "मैं बीमार न पड़ूँगी! मुझे भगवान् ने अमर कर दिया है।"

उमानाथ भी वहीं बैठा था। उसके औषधालय में कुछ आमदनी न होती थी; इसीलिए बहुत चिंतित रहता था। भाई-भावज की मुँहदेखी करता रहता था। बोला, "जाने भी दो भैया! बहुत दिन बहुओं पर राज कर चुकी है, उसका प्रायश्चित्त तो करने दो।"

गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारे के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गए थे। फूलमती कलसा लिये नीचे उतरी। पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला, संभल न सकी, पानी में गिर पड़ी। पल भर हाथ-पाँव चलाए, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं। किनारे पर दो-चार पंडे चिल्लाए, "अरे दाँड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।" दो-चार आदमी दाँड़े भी, लेकिन फूलमती लहरों में समा गई थी, उन बल खाती हुई लहरों में, जिन्हें देखकर हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा, "यह बुढ़िया कौन थी?"

"अरे, वही पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है।"

"अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे।"

"हाँ, थे तो पर इसके भाग्य में ठोकर खाना लिखा था।"

"उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं।"

"हाँ, सब हैं भाई, मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है?"

Published by

Pratibha Pratishthan

1661 Dakhni Rai Street,

Netaji Subhash Marg,

New Delhi-110002

ISBN 978-93-5048-759-4

PREMCHAND KI LOKPRIYA KAHANIYAN

by Premchand

Edition First, 2012